स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित.)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) तीन आने।

(४) देवता विचार। मू. =) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) प्राणायाम .... }
(५) आसन .... } छप रहे हैं।
(६) ब्रह्मचर्य- .... }

आगम-निबंध-माला। ग्रंथ ८

ॐ

वेदमें चर्खा।

लेखक और प्रकाशक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

द्वितीय वार २०००

संवत् १९७८, शक १८४३, सन १९२२

मूल्य आठ आने।

ॐ

चर्खेका मंत्र ।

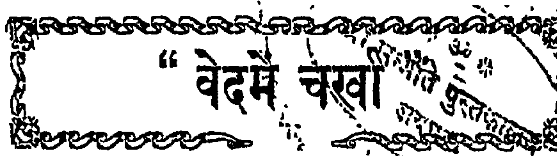
वेद कहता है कि "(१) सूत बनाकर, (२) उस पर रंग चढाओ, और (३) उसको खराब न करते हुए कपडे बुनो। (४) विचारशील बनो (५) सुप्रजा निर्माण करो (६) और तेजस्वियोंकी बुद्धिद्वारा निश्चित हुए मार्गोंका रक्षण करो, (७) यह कवियोंकाही काम है।" देखिये मंत्रभाग—

(१) तंतुं तन्वन्,
(२) रजसो भानुं अन्विहि,
(३) अनुल्बणं वयत।
(४) मनुः भव,
(५) दैव्यं जनं जनय,
(६) ज्योतिष्मतः धिया कृतान् पथः रक्ष।
(७) जोगुवां अपः।

"तंतुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि, ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्॥ अनुल्बणं वयत, जोगुवामपो, मनुर्भव, जनया दैव्यं जनम्॥ (ऋ. १०।५३।६)" इस मंत्रका भाव ऊपर बताया ही है। इस मंत्रकी सफलता होनेके लिये कपडे बुननेकी विद्या सार्वत्रिक होनेकी आवश्यकता है। इस विषयके वैदिक आदेशका ज्ञान होनेके लिये जिन मंत्रोंके मननकी आवश्यकता है वेह मंत्र इस लेखमें दिये हैं। आशा है कि वैदिक धर्मी सज्जन इसका विचार करेंगे।

औंध (जि. सातारा) } श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
१ फाल्गुन १९७८ } स्वाध्याय मंडळ,

मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स् ऑफ इंडिय सोसायटीज् बिल्डिंग स्टँढर्ड रोड, गिरगांव-मुंबई.
प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडळ, औंध, (जि. सातारा.)



" वेदमें चरखा "

(१) " वैदिक-सूत्र-विद्या "

सूत कातना, कपास ऊन रेशीम आदिसे कपडे बनाने योग्य सूत्र बनाना, सूत्रपर माया अथवा लस्सा लगाकर सूत्रको ठीक प्रकार तैयार करके, जुलाहेके खुड्डीपर तानों और बानोंके द्वारा उत्तम प्रकारका कपडा तैयार करना, आदि अनेकविध अंग कपडे बनानेके कार्यमें अत्यंत आवश्यक हैं। इन अंगोंके विषयमें वेद क्या कहता है, इसका विचार इस लेखमें करना है। सबसे प्रथम कपडोंके विषयमें वेदका क्या कथन है, यह देखना है—

(२) कपडोंके विषयमें वेदका कथन।

अथर्ववेद (१५।२।५) में ' उष्णीष[1] ' शब्द शिरके ऊपर बांधनेके साफेका वाचक है। यद्यपि यह साफा किस ढंगसे बांधा जाता था, यह जाननेका कोई साधन नहीं है तथापि साफेकी कल्पना निःसंदेह इस शब्दसे व्यक्त होती है। उष्णीष (Turban) सिरपर बांधनेका साफा वेदमें है। अर्थात् वेदकी सभ्यतामें आपको नंगे सिर भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, परंतु रंगीन साफा अपने सिरपर आप धारण कर सकते हैं। क्यों कि वैदिक सभ्यतामें रंगरेज भी हैं। जहां अथर्ववेद (कांड १५ में) व्रात्य अर्थात् संन्यासीकी दिगंबरवृत्तिका वर्णन है वहां भी—

---

(१) उष्णीष—अथर्व १५।२।५॥; मै. सं. ४।४।३॥; काठक सं. १३।१०॥; ऐ. ब्रा. ६।१॥; शत ब्रा. ३।३।२।३

विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं । अथर्व. १५।२।५

ऐसा कहा है । अर्थात् संन्यासीके " विज्ञान ही वस्त्र और दिन यह साफा है " । इस आलंकारिक वर्णनमें भी साफेकी कल्पना वेदने प्रकट की है, इससे पता लगता है कि सिरपर साफा बांधनेकी कितनी आवश्यकता वैदिक सभ्यतामें समझी जाती थी ।

" पांडव " शब्द (शत. ब्राह्मण. ५।३।५।२१ में) आया है। यह श्वेत कपडेका वाचक है । ' पांडव ' शब्दही बताता है कि शतपथके समय रंगीन कपडे भी हुआ करते थे । शतपथमें निम्न शब्द हैं—

(१) तार्प्यं वासः भवति ॥ २० ॥
(२) अथैनं पांडवं परिधापयति ॥ २१ ॥
(३) अथाधीवासं प्रतिमुंचति ॥ २२ ॥
(४) अथोष्णीषं संहृत्य पुरस्तादवगूहति ॥ २३ ॥

श. ब्रा. ५।३।५।

इनमें " तार्प्य, पांडव, अधीवास, उष्णीष." ये शब्द हैं । इनके अर्थ देखने योग्य हैं ' तार्प्य ' शब्दका अर्थ (Silk or linen garment) रेसीम अथवा सनका कपडा है । यह शब्द अथर्ववेदमें इसी अर्थमें आता है—

एतत्ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ॥
तत्त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥

अ. १८।४।३१

" सविता देव धारण करनेके लिये तुझे यह वस्त्र देता है, इसलिये तू नियमोंके अनुकूल चलनेवालेके राज्यमें (वसानः) रहता हुआ इस (तार्प्य) रेसीमके पोशाकको धारण करके चलो।"

'तर्प्य और तार्प्य' ये दोनों शब्द एकही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। जो ऊपर ओढनेकी चादर अथवा धोती होती है " परिधान (Garment) कहते हैं—

यत्ते वासः परिधानं। अथर्व. ८।२।१६

'ओढनेका कपडा' यह है। एक वस्त्र शरीरके साथ होता है और एक उसपर ओढनेका होता है, एक बीचमें रखनेका होता है। इनके नाम वेदमें निम्नप्रकार हैं—

नीवि (Under garment)=शरीरके साथ पहनेका वस्त्र।

वासः (Garment)=बीचमें रखनेका कपडा।

अधीवासः (Over garment)=सबसे ऊपर ओढनेका दुशाला। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(१) यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्॥
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेद्रूक्ष्णमस्तुते॥
अथर्व. ८।२।१६

(२) अधीवासं परि मातूरिहन्नह० ॥ऋग्वेद १।१४०।९

(१) जो तेरे लिये बीचमें पहननेका वस्त्र, शरीरके साथ लेनेका कपडा किया जाता है, वह (ते तन्वे शिवं कृण्मः) तेरे शरीरके लिये उत्तम शोभादायक करते हैं और यह तेरे लिये मृदु स्पर्श करनेवाला होवे। तथा (२) यह माताका ऊपर ओढनेका कपडा है।

इन मंत्रोंमें ये शब्द देखने योग्य हैं । शरीरके अनुसार कपडे तैयार करनेकी कल्पना यहां स्पष्ट दिखाई देती है। अर्थात् दर्जी जैसे कपडे सीकर शरीरके अनुसार छोटा बडा बनाता है, वह बात उक्त मंत्रमें है। कई विद्वान लोग कहा करते हैं कि वैदिक समयमें दर्जीकी कला—कपडे सीनेकी कला—न थी। इस कथनका सप्रमाण खंडन हमने " सूई " नामक लेखमें कियाही है। यह विषय उस लेखमें पाठक देखें। तथा निम्न कपडे सीकर ही बनाये जाते हैं—

(१) द्रापि= { Coat of mail, Our coat, cloak. } ओवर कोट, सब कपडोंपर पहनेका चोगा, कोट। (ऋ. १।२५।१३; १।११६।१०; ४।५३।२; ९।८६।१४; ९।१००।९; अथ. ३।१३।१)

(२) अत्क= ,, ,, (ऋ. १०।४९।३; १०।९९।९)

(३) सामुल=Woolen shirt=ऊनका ॥ कुडता। (जै. उ. ब्रा. १।३८।४)

(४) शामुल्य=Woolen garment= सर्दीके दिनोंमें पहनेके लिये चोगा (ऊनका बना हुआ ॥ ऋ. १०।८५।२९)

इनके उदाहरण देखिये, निम्न मंत्रोंमें ये शब्द प्रयुक्त हैं—

पिशंगं द्रापिं प्रतिमुंचते कविः। ऋ. ४।५३।२

" भूरे रंगका चोगा कवि उतार कर रखता है। "

अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥ ऋ. १०।९९।९

" यह प्रशंसनीय कविको चलाता है, और उसको चोगा देता है, तथा मनुष्योंको भी देता है। "

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो विभजा वसु।

ऋ. १०।८५।२९

" ब्राह्मणोंके लिये चोगा दो और धन बांटो। " ये शब्द बताते हैं, कि दर्जीके सीये हुए कपडोंका उल्लेख भी वेदमें है। इसके अतिरिक्त " वस्त्र, वसन, वासः " आदि शब्द सामान्यतः कपड़ोंके हैं; धोती, चदर, आदि भाव इन शब्दोंका प्रसिद्ध ही है। " वस्त्र, वसन " आदि शब्दोंमें और " द्रापि; अत्क " आदि शब्दोंमें जो भेद है वह पाठकोंके मनमें आया ही होगा। धोती चादर आदि प्रकारके जो कपडे हैं वे वस्त्र, वसन नामसे प्रसिद्ध हैं और दूसरे दर्जीद्वारा सीये होते हैं। देखिये—

वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥

ऋ. ६।२९।२

" (सुरभिं अत्कं वसानः) शरीरके योग्य चोगा पहना हुआ तू (स्वः न) सूर्यके समान (दृशे) दिखाई देता है; हे (नृतो) नेता! तू (इषिरः बभूथ) प्रेरक होता है। "

इस मंत्रके " सुरभिं अत्कं " का अर्थ (Well-fitting Coat) शरीरके अनुसार यथायोग्य कोट अथवा चोगा, ऐसा होता है। अस्तु। कपडोंके विषयमें यद्यपि इस लेखमें विशेष लिखना नहीं है, तथापि विविध प्रकारके कपडोंका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिये जिन प्रमाणोंका विचार करना चाहिये, उतना करना अत्यंत आव-

श्यक है। इसलिये उक्त प्रमाण दिये हैं। उन प्रमाणोंका विचार करनेसे पाठकोंके मनमें यह बात आ जायगी कि वेदमें विविध-प्रकारके कपडोंका उल्लेख अवश्य है।

(३) अच्छे और बुरे कपडे।

वेदमें केवल कपडोंका ही उल्लेख नहीं है, प्रत्युत अच्छे और बुरे कपडोंका भेद बताया है, और अच्छे कपडे पहननेका ही उपदेश किया है। इस विषयमें निम्न शब्द दर्शनीय हैं—

(१) सु–वसन=(Splendid garment) उत्तम कपडा (ऋ. १।५१।४; ९।९७।१५)

(२) सु–वासाः=(Well dressed)=उत्तम पोशाक करनेवाला (ऋ. १।१२४।७; ३।८।४; १०।७१।४)

ये शब्द बताते हैं कि अच्छे और बुरे कपडों तथा पोशाकोंका विवेक वेद मंत्रोंमें है।

जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ ऋ. १।१२४।७

" धर्मपत्नी पतीकी इच्छा करती हुई उत्तम वस्त्र पहनकर जाती है।"

तथा—

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः॥ तं धीरासः कवय उन्नयंति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ ऋ. ३।८।४

" (सु–वासाः युवा) उत्तम कपडे पहना हुआ जवान आता है वह (श्रेयान्) यशस्वी बनता है। (मनसा देवयंतः) मनसे

देवता की उपासना करनेवाले आत्मज्ञानी कवी उसीकी उन्नति करते हैं। " तथा—

राज्ञः सु-वसनस्य ॥ ऋ. ६।५१।४

" उत्तम कपडे पहना हुआ राजा " इस मंत्रमें वर्णन किया है। इस प्रकार उत्तम शोभादायक कपडोंका वर्णन वेदमें है। सीये हुए तथा न सीये हुए कपडे हैं, और उनमें उत्तम और साधारण ऐसे भेद हैं। यह बात इन प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुकी है। अब और एक बात देखनी है वह यह है, कि कपडोंपर नकशी करनेकी कल्पना भी वेदमें है—

यजु. ३०।९ में तथा तै. ब्राह्मण ३।४।५।१ में "पेशस्कारी" शब्द आया है उसका अर्थ (Female embroiderer) कपडेपर नकशीका काम करनेवाली स्त्री, है। ' पेशस् ' शब्दकाही अर्थ (Embroidered garment) नकशी किया हुआ कपडा है। यह शब्द कईवार वेदमें आया है। इससे स्पष्ट पता लगता है कि कपडोंपर विविध प्रकारका नकशी काम करना वेदको अभीष्ट है, और यह फुरसतके समय स्त्रियोंने बनाना है। " द्रापि " शब्द ओवरकोटका वाचक पूर्व स्थानमें आया है, इसपर सुवर्णके कलाबतूकी नकशी हुआ करती है, इसलिये इसको ' हिरण्यय द्रापि ' कहते हैं। देखिये—

---

(१) पेशस्—ऋ. २।३।६; ४।३६।७; ७।३४।११; ७।४२।१; वा. यजु. १९।८२; ८९; २०।४०; ऐ. ब्रा. ३।१०।

विभ्रद्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
ऋ. १।२५।१३

" वरुण (हिरण्ययं द्रापिं) सोनेके कलाबतूका नकशीकाम किया हुआ चोगा पहनता है और (निर्णिजं) सुंदर वस्त्र धारण करता है । " ये शब्द अत्यंत स्पष्ट हैं । तात्पर्य साधारण धोतियां, चादरें, कुडते, कोट, चोगे, और नकशीकाम किये हुए कपडे वेदमें हैं । इन कपडोंपर—

तुस=(Fringe) झालर, गोट, किनारी, किनारा (तै. सं. १।८।१।१; २।४।९।१; ४।१।१।३; काठक सं. १३।१,

दशा=(Border) किनारी (शत. ब्रा. ३।३।२।९)

दशापवित्र–(") " (ऐ. ब्रा. ७।३२, श. ब्रा. ४।२।२।११)

किनारियां, गोट आदिसे शोभाभी लानेकी सूचना ये शब्द दे रहे हैं । इसके अतिरिक्त कपडेके अंतमें जो तंतु खुले रहते हैं उनको ग्रंथियां लगा कर शोभा लानेकी सूचना " प्रगाथ " शब्द दे रहा है । यह शब्द तैत्ति. सं ४।१।१।३ (काठक. सं. २३।१) में है । इसका अर्थ (End of cloth; closely woven ends of a cloth) कपडेके अंतके सूत्रोंको विशिष्ट प्रकारसे बनाना है ।

इसके अतिरिक्त " प्रवर, प्रवार (बृ. उ. ६।१।१०) बरासी (का. सं. १५।४); प्राचीनावीत (श. ब्रा. २।४।२।२) इत्यादि अनेक शब्द हैं कि जो विविध प्रकारके छोटे और मोटे कपडोंके दर्शक हैं ।

" वात-पान " शब्द (तै. सं. १।१।१।३) में आया है, इसका अर्थ खिडकीपर लटकानेके अथवा दरवाजोंपर लटकानेके विशेष प्रकारके कपडे, ऐसा है। ये विशेष प्रकारके बनाये हुए नकशीदार अथवा साधे कपडे श्रीमानोंके घरोंकी खिडकियोंकी शोभा बढाते हैं।

विविध प्रकारके संस्कारोंके लिये भिन्न भिन्न कपडे हुआ करते हैं। विवाहके लिये जो खास कपडा होता है उसको " वाधूर्य-वासः " (Bridal garment) कहते हैं। ऋग्वेद (१०।८५। ३४) तथा अथर्व वेद (१४।२।४१) में इसका उल्लेख है। इस प्रकार सर्व साधारण और विशेष प्रकारके कपडे वेदने बताये हैं।

ये सब कपडोंके नाम सूचित करते हैं कि वैदिक सभ्यतामें अनेक प्रकारके कपडे थे। विशेष अवसर पर विशेष प्रकारके कपडेभी पहने जाते थे। जैसा शादियोंके कपडे भिन्न प्रकारके होते थे, उपनयनके समयके अन्य प्रकारके, इसीप्रकार यज्ञके समय पहननेके भी भिन्न प्रकारके होते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषादोंके पोशाक और कपडोंकी बनावट विभिन्न प्रकारकी थी। इस विषयमें श्रुति और स्मृतिके वचन स्पष्ट ही हैं।

(४) राजाका पोशाक।

जनताके कपडोंकी अपेक्षा राजाका पोशाक विशेष प्रकारका होता है। पूर्वोक्त " द्रापि, अत्क " आदि जो चोगोंके नाम आये हैं, वेही जब " हिरण्य यद्रापि " अथवा " हिरण्यय अत्क " कहे जाते हैं, तब वे राज पुरुषोंके अथवा श्रीमानोंके समझना उचित है। प्रायः राजाके कपडोंके वर्णनोंमेंही उक्त शब्दोंका

प्रयोग हुआ है। राजाके लिये विशेष पोशाक हुआ करता था और उसको वही पहननेके लिये दिया जाता था। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्सोमाय राज्ञे परि-
धातवा उ ॥ २ ॥ परीदं वासो अधिथाः स्वस्त-
येऽभू गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ॥ ३ ॥ अथर्व. २।१३

" बृहस्पतिने (एतत् वासः) यह पोशाक सोम राजाके लिये (परिधातवै) पहननेके लिये (प्रायच्छत्) दिया है। हे राजा ! (इदं वासः) यह पोशाक (परि अधिथाः) पहनो, (स्वस्तये अभूः) प्रजाका कल्याण करो और (गृष्टीनां अभिशस्ति–पा) प्रजाओंका विनाशसे रक्षण करो। "

राजसभाओंमें जहां प्रजाओंके (स्वस्ति) कल्याणका विचार सोचा जाता है और जहां (अभिशस्ति-पा) विनाशसे संरक्षण करनेका उपाय सोचा जाता है, उन सभाओंमें बैठनेके समय राजाको जो पोशाक पहनना चाहिये उसका वर्णन उक्त मंत्रमें है। इस समय निम्न मंत्र और एकवार देखिये—

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वं ॥
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥
अथर्व. ८।२।१६

[Whatever robe to cover thee or zone thou makest for thyself, we make it pleasant to thy frame: may it be soft and smooth to touch.]

"जो चोगा अथवा कोट आप अपने लिये बना रहे हैं, हम आपके शरीरके योग्य ऐसा बनाते हैं, कि जो आपको आनंद देगा और शरीरको सुखस्पर्श देनेवाला होगा।"

क्या यह वर्णन विशेष प्रकारसे कपडे और पोशाक बनानेका नहीं है। शरीरके अनुसार तथा ओहदे आदिके अनुसार पोशाक होनेकी सूचना इससे मिलती है। वेदमें कारीगरका नाम त्वष्टा होता है। 'त्वष्टा' देवोंका कारीगर है। यह कपडे बनाता है—

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्॥ अथर्व. १४।१।५३

"(कवीनां प्रशिषा) कवियोंकी आज्ञाके अनुसार (बृहस्पतेः कं वासः) बृहस्पति—ज्ञानी—केलिये आल्हाददायक पोशाक (शुभे) शुभ प्रकारसे (त्वष्टा व्यदधात्) त्वष्टा-कारीगर-ने बनाया है।"

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि विशेष प्रकारका कपडा विशेष विद्वानोंकी रुचीके अनुसार कारीगर बनाते हैं। यह हरएक स्थानके कारीगरोंका कामही होता है कि वे उत्तम, उत्तम हुनरका काम जनताकी रुचीके अनुसार बनावें। मंगल प्रसंगोंके लिये विशेष कपडा होता था, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

स इत्तत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमंगलं॥

अथर्व. १४।१।३०

"वह ब्रह्मा (स्योनं सु-मंगलं वासः) सुखकारक मंगल प्रसंगके लिये बनाया हुआ कपडा (हरति) लेता है।" ब्रह्मा

यज्ञमें मंगल करनेवाला ऋत्विज् होता है, वह यज्ञके सुमंगल प्रसंगके लिये यह कपडा ले जाता है। पितरोंके लिये कपडा अलग होता है, देखिये—

तद्वः पितरो वासः। वा. यजु. २।३२

" वह आप पितरोंके लिये कपडा है।" ये कपडे विशेष प्रसंगोंके लिये भिन्न भिन्न रंगोंके हुआ करते थे अर्थात् पोशाकका आकार, रंग, बनावट और सजावट भिन्न भिन्न होती थी। इस विषयमें उदाहरणके लिये निम्न मंत्र देखिये—

वासो अग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसो॥

वा. यजु. ११।४०

" (विश्वरूपं वासः=Many-hued dress) विविध रंगोंवाला पोशाक (सं व्ययस्व) बनाओ और पहनो।" (Robe thyself in many-hued attire)

इस मंत्रका " विश्व—रूपं वासः " यह शब्द—समुदाय कपडोंके विभिन्न रंग रूप और आकार बता रहा है। एक ही कपडेपर विविध रंगोंकी नकशी होती है ऐसा उक्त शब्दसे पता लगता है। यह कपडे रंगानेका काम करनेवाले " **रजयिता** " एक विशेष कारीगर होते थे। यजुर्वेदमें ' **रजयित्री** ' शब्द स्त्री—रंगरेजका वाचक आया ही है। जो सूत रंगवानेका काम भी करती है, और रंगेहुए सूत्रसे जुलाहे कपडा तैयार करते हैं। इस विषयका प्रमाण इसी लेखमें आगे आवेगा। तात्पर्य (१) रंगेहुए

सूत्रका कपडा बनाना, तथा (२) पहिले श्वेत कपडा बनाकर उसपर विविध रंग देना, ये दोनों धंदे वेदमें हैं, यह बात यहां सिद्ध होती है। वस्त्रपर चमक लानेकी कल्पना निम्न मंत्रसे हो सकती है—

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ॥ हिरण्यवर्णा सुदृशीक संदृग्गवां मातानेत्र्य न्हामरोचि ॥ ऋ. ७।७७।२

" (विश्वं प्रतीची सप्रथा) सब ओर फैलनेवाली उषा (उत् अस्थात्) आगई है। वह (रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती) चमकदार श्वेत वस्त्र धारण करती हुई (अश्वैत्) आरही है। सुवर्णके समान जिसका वर्ण है और (सु—दृशीक—संदृक्) जो अत्यंत दर्शनीय है वह (गवां माता) किरणोंकी जननी (अह्नां नेत्री) और दिनोंकी संचालक (अरोचि) प्रकाशमान हुई है। "

इस मंत्रमें " रुशत् शुक्रं वासः " ये शब्द " चमकदार सफेद वस्त्र " की कल्पना दे रहे हैं। इस प्रकार विविध रंगरूप और चमकवाले वस्त्रोंकी कल्पना वेदमें है। अबतक वस्त्रोंका उपयोग अपने पहननेके कामके लिये बताया है। साधारण मनुष्य, श्रीमान भद्रपुरुष ओहदेदार तथा राजा सरदार आदि लोग किस प्रकारके वस्त्र पहनते थे, इसकी कल्पना पूर्वोक्त मंत्रोंसे हो सकती है। अब वस्त्रोंका उपयोग दूसरोंको देनेके लिये भी होताथा, इसका विचार करना है। संन्यासी, साधु, विद्वान ब्राह्मण आदिकोंके लिये धर्मार्थ वस्त्रोंका दान करनेकी कल्पना निम्न मंत्रोंसे मिल सकती है।

(५) वस्त्रोंका दान।

ये अश्वदा उत वा संति गोदा ये वस्त्रदा सुभगास्तेषु रायः। ऋ. ५।४२।८—

"जो श्रीमान पुरुष घोडोंका दान करते हैं, (गो-दाः) गौवोंका दान करते हैं तथा (वस्त्र-दाः) कपडोंका दान करते हैं, (तेषु रायः सुभगाः) उनकेपास संपत्ति पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होती है।" अर्थात् ऐसे दानी पुरुषोंकी ही सच्ची संपत्ति कहलाती है। इनमें वस्त्रोंका दान करनेका उपदेश है। गरीबों तथा सत्पात्रोंको वस्त्रोंका दान करना अत्यंत योग्य है। तथा—

पंच रुक्मा पंच नवानि वस्त्रा पंचास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ॥ अथर्व. ९।५।२५

"(पंच रुक्मा) पांच मोहरें, (पंच नवानि वस्त्रा) पांच नवीन वस्त्र, और पांच (धेनवः) गौवें इसकेलिये होतीं हैं।" इस मंत्रमें पांच पांच नवीन अर्थात् न वर्ती हुई वस्त्रोंके प्रदान का उल्लेख है। गरीब अनाथोंके लिये कदाचित् पहना हुआ भी कपडा दिया जासकता है, परंतु संन्यासी, साधुसंत, ब्राह्मण, आदिकोंको उनके आदरके कारण जो कपडा दिया जाता है, वह नवीन कपडाही चाहिये। तथा देखिये—

दश रथान् दश कोशान् दश वस्त्राणि भोजना ॥
दशो हिरण्यपिंडान् दिवोदासादसानिषम् ॥
ऋ. ६।४७।२३

" दस रथ, दस थैले, दस वस्त्र, भोजन, दस सुवर्णके गोले, दिवोदासके पाससे प्राप्त हुए।"

इस मंत्रमें " दस वस्त्रोंका दान " लिखा है। वस्त्रोंके साथ रथ, कोश, भोजन, सोनेके टुकडे अर्थात् मोहरें और हैं। दानके साथ दक्षिणा देना उचित ही है। तथा—

अस्मै वस्त्राणि विश ऐरयन्ताम् ॥ अथर्व. ५।१।३

" इसके लिये सब (विशः) प्रजायें वस्त्रोंकी भेंट करते हैं।" इस विषयमें और एक मंत्र देखिये—

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रं ॥ यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद्रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ अथर्व. १४।२।४१

" देवोंका दिया हुआ, मनुके साथ रहा हुआ यह (वाधूयं वासः) विवाहके समयका वधूका वस्त्र, जो (चिकितुषे ब्रह्मणे ददाति) ज्ञानी ब्राह्मणको दान देता है वह अनिष्टको दूर करता है।

इस मंत्रमें " विवाहके कपडों " का उल्लेख है और विवाहके समय विद्वान ब्राह्मणोंके लिये कपडे दान करनेका उपदेश भी इसमें है। तात्पर्य श्रेष्ठोंके लिये, कनिष्ठोंके लिये विविधप्रकारके कपडे दान देनेकी पद्धति वेदको अभीष्ट है, यह बात उक्त वचनोंके मननसे सिद्ध हो सकती है।

(६) कपडोंका चोर।

गरीब लोग जो सर्दीके कारण लाचार होते हैं, कपडे न होनेकी अवस्थामें संभवतः चोरी भी करते हैं। क्यों कि अन्न और वस्त्रकी

ही मनुष्यको अत्यंत आवश्यकता है, जिसके कारण मनुष्य समय समय पर गिरभी जाते हैं। इसलिये राजप्रबंधद्वारा तथा श्रेष्ठ श्रीमान पुरुषोंके दान आदिसे जनतामें ऐसा कोई अभागा न रहे ऐसी व्यवस्था होनी उचित है। क्यों कि किसी प्रसंगमें चोरी करनेकी लाचारीकी अवस्था उत्पन्न होना, जैसा चोरी करनेवालेको बुरा है, वैसाही जनताको भी बहुत बुरा है। इसलिये कहा है कि—

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ॥ नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ऋ. ४।३८।५

"(न वस्त्र-मथिं तायुं) जैसा कपडे चोरनेवाले चोरके विषयमें वैसाही (एनं) इसके विषयमें (भरेषु) युद्धोंमें (क्षितयः) मनुष्य (अनुक्रोशन्ति) पुकारते रहते हैं। (न) जिसप्रकार (पशुमत् यूथं श्रवः च अच्छा) पशुसमूहपर अथवा अपने भक्ष्यपर (जसुरिं श्येनं) भूखा गीध (नीचा अयमानं) निम्न गातेसे एकदम गिरता है, वैसा वहभी गिरता है।"

उक्त मंत्रमें "वस्त्र-मथिं-तायुं" ये शब्द कपडे–चोरकी अधोगतिका वर्णन कर रहे हैं। "वस्त्र-मथि" शब्दका और अर्थ कपडोंकी खराबी करनेवाला ऐसाभी है।

कपडोंके उपयोगमें दान देना, पहनना, घरकी शोभा बढाना, आदि उपयोग हैं, उसी प्रकार कपडोंकी चोरी भी हो सकती है। इसलिये इसविषयमें सावधानी रखनी चाहिये। यह मंत्र यहां भर देनेका उद्देश यही है कि, हरएक पैलूसे हमको देखना है कि,

वैदिक उपदेशमें कपडोंका अस्तित्व है वा नहीं। किसी बातकी शंका न रहे इसलिये विविध रीतिसे कपडोंका अस्तित्व देखना है, कि है वा नहीं। इस समयतक जितने मंत्र हमने देखे हैं, उनसे वैदिक उपदेशमें वस्त्रोंका अस्तित्व है, यह बात सिद्ध हो चुकी है; तथापि शंका करने वालोंके समाधानके लिये हमें औरभी कई बातोंका विचार करना है।

(७) अनेक वस्त्र पहननेकी रीति।

वेदके मंत्र देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, एकही वस्त्र पहनना पर्याप्त नहीं है; परंतु तीन अथवा तीनसे अधिक वस्त्रोंका उपयोग करनाभी समय समयपर आवश्यक है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये——

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जांपते ॥ सेमं नो अध्वरं यज ॥ ऋ. १।२६।१

" हे (मियेध्य ऊर्जांपते) पवित्र और बलोंके स्वामिन्! (वस्त्राणि वसिष्व) अनेक वस्त्र पहनो और (नः) हमारे (इमं अध्वरं यज) इस सत्कर्मको करो।"

इस मंत्रमें " वस्त्राणि वसिष्व " का अर्थ " तीन अथवा तीनसे अधिक वस्त्र पहनो " ऐसा होता है। नीचेका शरीर आच्छादित करने के लिये धोती, सिरके लिये पगडी और बीचके शरीरके लिये कुडता, कमीज, चोगा अथवा दुशाला इतने तो वस्त्र हरएक गृहस्थीको आवश्यकही हैं। यही बात ध्यानमें रखकर " वस्त्राणि " इस शब्दका प्रयोग हुआ है। तथा——

पंच रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवंति ॥ अथर्व. ९।५।२६

" सोनेके पांच जेवर इसके लिये होते हैं और शरीरके लिये कवच तथा अनेक वस्त्र होते हैं । "

इस मंत्रमें भी " तन्वे वासांति भवंति " ऐसा कहा है अर्थात् " एक शरीरके लिये तीनसे अधिक वस्त्र होते हैं । " यह उक्त मंत्रका आशय है । इस विषयमें और एक मंत्र देखिये—

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरछिद्रा मंतवो हि सर्गाः ॥ ऋ. १। १५२।१

" (युवं) आप (पीवसा वस्त्राणि) मोटे अनेक कपडे (वसाथे) पहनते हैं । तथा (युवोः) आपकी (मंतवः सर्गाः) मननशक्तिके प्रभाव (अ-च्छिद्राः) दोष रहित हैं । "

अनेक अर्थात् तीन किंवा तीनसे अधिक मोटे कपडे पहननेका स्पष्ट भाव इस मंत्रमें है । मोटे कपडेका तात्पर्य कोई खादीके कपडे समझे अथवा वूनके मोटे कपडे समझे । इस विषयमें यहां कुछ भी नहीं कहा जा सकता । अब कई कहेंगे कि अधिक कपडे पहननेसे क्या हो सकता है ? कपडे अच्छे होने चाहिये; इस विषयमें क्या प्रमाण हैं ? इस प्रश्नका विचार करनेके लिये निम्न मंत्र देखिये—

(८) अनेक सुंदर वस्त्र ।

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानाः ॥ अभिचंद्रा भर्तवे नो हिरण्याऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ ऋ. ९।९७।५०

" हे सोम ! हे देव ! ! हमारे लिये (सु-वसनानि वस्त्रा) उत्तमप्रकारके सुंदर वस्त्र (अभि अर्ष) प्राप्त कराओ । तथा (पूयमानाः) नीरोग अथवा पवित्रता करनेवाली (सु-दुघाः) सुगमतासे जिनका दूध निचोडा जाता है ऐसी गौवें, तथा धारण करनेके लिये (चंद्रा हिरण्या) तेजस्वी जेवर और (रथिनः अश्वान्) रथ खेचने योग्य घोडे चाहिये । "

इस मंत्रमें " सु-वसनानि वस्त्राणि " शब्द हैं । इनका भाव यह है कि " शरीरके लिये योग्य होनेवाले कपडे " । तथा—

युवा सुवासाः परिवीत आगात् ॥ ऋ. १।८।४

" जवान (सु-वासाः) सुंदर वस्त्र पहन कर आता है । " इस मंत्रमें भी सुंदर वस्त्र पहननेका वर्णन है । और देखिये—

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते
दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ॥ ऋ. १।१३४।४

" तेरे लिये पवित्र उषा (भद्रा वस्त्रा) उत्तम वस्त्र आश्चर्य कारक किरणोंमें (तन्वते) फैलाती हैं । नवीन किरणोंमें (चित्रा) चित्र विचित्र रंगोंके वस्त्र फैलाती हैं । "

इस मंत्रमें " भद्रा चित्रा वस्त्रा " (भद्राणि चित्राणि वस्त्राणि) ये शब्द " कल्याण कारक चित्र विचित्र रंगवाले सुंदर वस्त्र " यह भाव बताते हैं । मंत्रमें आलंकारिक वर्णन अत्यंतही मनोहर है । उषारूपी स्त्री प्रातःकालमें स्नान करके शुद्ध होती हुई अपने वस्त्र धोकर सुखानेके लिये सूर्यकिरणोंमें फैलाती है, जो आकाशमें विविध रंग दिखाई देते हैं, उसपर यह काव्य अत्यंत

हृदयंगम है । इससे स्त्रीका कर्तव्य भी व्यक्त होता है कि वह प्रातःकाल स्नान करके शुद्ध होकर भगवान् की उपासना करे इ० । अस्तु । मंत्रोंके इस प्रकारके भाव बताना इस लेखकी मर्यादासे बाहिर है क्योंकि इस लेखमें केवल कपडोंके विषयमें जो बात होगी उतनी ही यहां बतानी है । अन्य विषय अन्य प्रकरणमें स्पष्ट किये जा सकते हैं । उक्त मंत्र स्त्रियोंके विषयमें हुआ । अब पुरुषोंके विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ॥ भद्रान् कृण्वन्निंद्रं हवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ ऋ. ९।९६।१

" शूर सेनानायक रथोंके अग्रभागमें होता है, उस समय उसकी सेना हर्षयुक्त होती है । वह सेनापति (सखिभ्यः) मित्रोंके लिये कल्याणकारक बातें करता है, इस प्रकारका यह सोम (रभसानि वस्त्रा) चमकीले वस्त्र (आदत्ते) पहनता है । "

इस मंत्रमें " **रभसानि वस्त्राणि** " ये शब्द अत्यंत तेजस्वी चमकदार कपडोंका बोध कराते हैं । जैसी शस्त्रपर चमक होती है अथवा जैसी सोनेचांदीपर चमकाहट होती है वैसी जिन कपडोंपर होती है उनको 'रभस वस्त्र' कहा करते हैं । तथा और देखिये—

भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान्कविर्नि वचनानि शंसन् ॥ आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ ऋ. ९।९७।२

" (समन्या भद्रा वस्त्रा) युद्धमें पहनने योग्य उत्तम वस्त्र (वसानः) पहननेवाला वडा कवि (वचनानि नि शंसन्) उपदेश सुनाता है । सबको पवित्र रखता हुआ और दिव्य कर्मोंमें (जागृविः) जागृत रहनेवाला (विचक्षणः) ज्ञानी तू दोनों सेना-ओंके बीचमें (आ वच्यस्व) प्राप्त हो जाओ । "

इस मंत्रमें " समन्या भद्रा वस्त्रा वसानः " ये शब्द बता रहे हैं कि युद्धके समय पहने योग्य उत्तम वस्त्रोंकी कल्पना वेदमें है । वीर लोक ये वस्त्र पहन कर युद्धमें प्रविष्ट होते हैं । उपास-नाके समय किस प्रकारके कपडे होते थे, इसकी किंचित् कल्पना निम्न मंत्रसे हो सकती है—

दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे
शस्यमाना ॥ भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेय
मस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ ऋ. ३।३९।२

" (दिवः चित् पूर्व्या) दिनका उदय होनेके पूर्वही (जागृविः) जागती हुई और (विदथे शस्यमाना) ज्ञानयज्ञमें प्रशंसनीय ऐसी (आ जायमाना) प्रकट होकर (भद्रा अर्जुना वस्त्राणि वसाना) कल्याणकारक शुभ्र स्वच्छ वस्त्र पहननेवाली स्त्रीके समान यह (अस्मे सनजा) हमारी सनातन (पित्र्या धीः) पितासे प्राप्त हुई बुद्धि है । "

इस मंत्रमें दिन सुरू होनेके पूर्व ही धोये हुए स्वच्छ वस्त्र पह-नकर उपासनामें अपनी बुद्धि समर्पित करनेका उपदेश है । " भद्रा

अर्जुना वस्त्रा वसाना " अर्थात् कल्याण कारक श्वेत वस्त्र पहननेकी कल्पना इस मंत्रमें स्पष्ट है। रंगदार और चमकीले वस्त्रोंकी कल्पना निम्न लिखित मंत्रमें है—

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानः ॥ ऋ. १०।१।६

" वह तो चमकदार वस्त्र पहनता है। " इसमें " पेशनानी वस्त्राणि " ये शब्द चमकीले वस्त्रोंके बोधक हैं।

इन मंत्रोंसे न केवल उत्तम वस्त्र पहननेकी बात विदित हुई है, परंतु तीन अथवा तीनसे अधिक वस्त्र पहननेकी कल्पना भी उत्तम प्रकारसे व्यक्त हो गई है। अब स्त्रीपुरुषोंके कपडोंमें भेद है वा नहीं यह बात देखनी चाहिये, क्योंकि कोई यह न समझे कि, स्त्रियोंके तथा पुरुषोंके एकसेही कपडे वैदिक सभ्यतामें होते थे। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(१) स्त्रीका कपडा पतिको नहीं पहनना चाहिये।

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयाऽमुया ॥ पतिर्यद्वध्वो वाससः स्वमंगमभ्यूर्णुते ॥ अथर्व. १४।१।२७

" (यत् पतिः) जब पति (स्वं अंगं) अपना शरीर (वध्वः वाससः) स्त्रीके कपडेसे (अभि ऊर्णुते) लपेटता है, तब (अमुया पापया) इस पापके बर्तावके साथ (रुशती तनूः) दिखाई देनेवाला उसका शरीर (अश्लीला भवति) अपवित्र हो जाता है। "

इस मंत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि, पुरुषोंको कभी स्त्रियोंके कपडे नहीं पहनना चाहिये। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि

दोनोंके कपडे भिन्न हैं। इतने मंत्रोंके प्रमाणोंसे विविध प्रकारके कपडोंकी वैदिक कल्पना स्पष्ट हो चुकी है। अब शायद किसीको यह संदेह ही नहीं होगा कि वैदिक सभ्यतामें कपडे थे या नहीं। कई लोग अब भी समझते हैं, कि वैदिक सभ्यता " जांगली सभ्यता " है, वहां उनमें कपडे कैसे हो सकते हैं? परंतु इस लेखमें दिये हुए थोडेसे मंत्रोंनें यह बात विना संदेह सिद्ध की है कि वैदिक सभ्यतामें सभी प्रकारके पोशाक और कपडे लत्ते थे। अब रही बात " जांगली सभ्यता " की, तो उस विषयमें यहां इतना ही कहना है कि वैदिक समयकी जो " आरण्यक सभ्यता " थी वह आजकलके प्रतिष्ठित सभ्योंकी कल्पनामें भी नहीं आ सकती है, इतनी श्रेष्ठ है। राजे महाराजे भी स्वेच्छासे ही दुनयवी भोगोंपर लाथ मारकर बडे बडे जेवर और कपडे छोडकर जंगलोंमें जा कर रहा करते थे और तपस्वियोंका वनविहार करते करते योगसाधनमें मस्त हो जाते थे। वह ब्रह्मानंद पाशवी भोगोंमें गिरनेवाले आजकलके अंध घमंडियोंको कल्पनामें भी कहां प्राप्त होना है? अस्तु। जांगली सभ्यता कह कर जो उपहास करते हैं उनको वैदिक आदेशके " आरण्यक जीवन " के अपूर्व पवित्रताकी कल्पनाही नहीं है, इतना ही यहां कहना है।

अस्तु। वेदकी " आरण्यक सभ्यता " कैसी थी, इसका विचार किसी अन्य लेखमें किया जायगा। यहां वेदके ' नागरिक

जीवन ' काही विचार करना है। सो ऊपर बताया कि नागरिक गृहस्थियोंके लिये अनेक प्रकारके कपडेलत्ते वेदने बताये हैं।

(१०) धोबीका अस्तित्व।

कपडोंके अस्तित्वका विचार करते समय धोबीके अस्तित्वकाभी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि पूर्वोक्त मंत्रोंसे यह बात सिद्ध होचुकी है कि, प्रत्येक मनुष्यके लिये तीनसे अधिक कपडे पहननेकी संमति वेदने दी हुई है। जब घरमें अनेक मनुष्य होंगे और प्रत्येकके कई कपडे होंगे, तो घरमेंही धोना कठिन हो जाता है। इसलिये जिस वेदने अनेक कपडे पहनेकी आज्ञा दी हुई है, उस वेदने " धोबी " भी दियाही होगा।

वा. यजु. अ० ३० में " **वासः पल्पूली** " शब्द आया है। यह शब्द स्त्री धोबी, अथवा धोबीकी स्त्रीका बोधक है। " धोबन बरेठन " का वाचक उक्त शब्द है। जब " **धोबन** " होगी तब उसकेलिये " धोबी " अवश्य ही होगा, क्योंकि धोबीके होनेपर ही धोबनने होना है। इसलिये वेदने धोबीका भी उल्लेख किया है, देखिये---

ग्रावा शुंभाति मलग इव वस्त्रा ॥ अथर्व. १२।३।२१

" (मल--ग इव) धोबी जैसा वस्त्रोंको स्वच्छ करता है वैसाही यह पत्थरभी करता है। " वस्त्र स्वच्छ करनेमें जैसी धोबीकी सहायता चाहिये वैसा उत्तम पत्थरभी चाहिये। पत्थर न हो तो धोबी किसपर कपडे स्वच्छ कर सकता है? तात्पर्य वेदमें धोबीका अस्तित्व सिद्ध कर रहा है कि वैदिक सभ्यतामें कपडे बहुत हुआ करते थे।

"रजयित्री" (यंजु. ३०।१२) यह शब्द कपडे रंगाने- वाली स्त्रीका बोधक है, इस शब्दसेही कपडे रंगानेवाले पुरुषका भाव निकल आसकता है, यद्यपि मैंने अभीतक कोई ऐसा शब्द नहीं देखा कि जिससे पुरुष रंगरेजका बोध हो। अस्तु कपडे रंगाने- वाले और कपडे धोनेवाले इन दोनों धंदोंके उल्लेख वेदमें हैं, इससे कपडोंका बहुत होना भी सिद्ध है।

तात्पर्य अनेक दृष्टियोंसे हमने देखा, और अनुभव किया कि वैदिक सभ्यतामें नागरिकोंके पास कोई कपडोंकी कमी नहीं थी। अब विचारना है कि ये कपडे किस रीतिसे बनाये जाते थे।

(११) कपडे बनानेके साधन।

जुलाहोंका अस्तित्व।

क्या आजकलके समान बडी बडी यंत्रें बनाकर कपडे बनाये जाते थे, अथवा कपडे बनानेका काम हरएक व्यक्तिका, किंवा हर- एक घरका था; इसका विचार करना है। वेदमें जुलाहोंका अथवा कपडे बुननेवालोंका नाम कईवार आगया है। देखिये—

(१) सिरी (२) वयित्री	A female weaver जुलाही, कपडा बुननेवाली स्त्री।
(१) वासोवायः (२) वायः	A weaver=जुलाहा, कपडे बुननेवाला पुरुष।

ये शब्द वेदमें हैं। ये शब्द जिन मंत्रोंमें प्रयुक्त हुए हैं वे मंत्र इसी लेखमें आगे आजायंगे। इन शब्दोंसे वैदिक सभ्यतामें जुलाहोंका अस्तित्व सिद्ध होता है। कई कहेंगे कि जब जुलाहे हैं, तब

कपडे बुननेका धंदा घरेलु नहीं हो सकता। कपडे बुननेका पेशा करनेवाले जहां होंगे वहां वह कार्य घर घरमें नहीं होगा। परंतु यह युक्ति ठीक नहीं है, क्यों कि आजकलभी हम देखते हैं कि, रोटी बेचनेका धंदा करनेवाले–होटेलवाले–बहुत होनेपरभी घर घरमें रोटी पकाई जातीही है ; इसलिये वेदमें जुलाहोंका नाम आनेसे सूत कांतना, कपडा बुनना आदि काम घरेलु नहीं हैं, ऐसा नहीं माना जासकता। इसविषयके प्रमाण आगे इसी लेखमें आ जायंगे। जुलाहोंके नाम ऊपर दियेही हैं, अब उनके साधन क्या थे इसका विचार करना है। वेदमें निम्न लिखित नाम दिखाई देते हैं, जो कपडा बुननेके साधनीभूत यंत्र हैं—

(१) वेमन्=A loom (य. १९।८३)=खड्डी, राछ, वह यंत्र कि जिसपर कपडा बुना जाता है।

(२) सीसं=A lead weight (य. १९।८०)=सीसेका भार, अथवा लोहेका बोझ, जो कपडा लपेटनेके चक्रपर लगाया जाता है, जिससे कि ठीक प्रकार कपडा लपेटा जाता है।

(३) तसरं=A shuttle (ऋ. १०।१३०।२; य. १९ ८३; मै. सं. ३।२।९; काठक ३८।३)=नाल, धडकी, नाली, जिसका उपयोग कपडा बुननेमें होता है, इससे कपडेमें छोटे धागे भरे जाते हैं।

ये नाम जुलाहेके अथवा कपडे बुननेके यंत्रके अंगोंके हैं। इनका उपयोग जिन मंत्रोंमें हुआ है वे मंत्र आगे आजायंगे। अब और देखिये—

(१) ओतु
पर्यास } The woof=बाना, भरनी

इनमेंसे ' ओतु ' शब्द ऋ. ६।९।२, ३; तै. सं. ६।१।१४; अथ. १४।२।५१ आदि स्थानोंमें आगया है। और दूसरा ' पर्यास ' शब्द शत. ब्रा. ३।१।२।१८ में आया है। तानेके साथ बाना अवश्य चाहिये, उसके शब्द निम्न स्थानमें दिये हैं—

(२) तंतु
तंत्र
अनुच्छाद
प्राचीनतान
प्राचीनातान } The warp=ताना, तानी, कपडा बुननेके लिये जो लंबे धागे ताने जाते हैं।

इनमेंसे " तंतु, तंत्र " ये शब्द वा. य. सं. १९।८०; ऋ. १०।१३०।२; अथ. १०।७।४२ में हैं। " अनुच्छाद " शब्द शत. ब्रा. ३।१।२।१८ में और " प्राचीनतान " शब्द तै. सं. ६।१।१।४ तथा ऐ. ब्रा. ८।१२।३ में प्रयुक्त हैं। पाठक वहां देख सकते हैं। जुलाहेकी खड्डीके लिये कई खूंटियां लगाई होतीं हैं उनकाभी नाम वेदमें है, देखिये—

(३) मयूख=a peg=खुंटी, जो खड्डीके साथ होती है।

इसप्रकार कपडे बुननेके यंत्रके भागोंके नाम वेदमंत्रोंमें स्थान स्थानमें प्रयुक्त हुए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कपडा बुननेकी विद्या वैदिक सभ्यतामें अवश्य थी। कपडे बुननेकी क्रियाओंकी उपमायें वेदमें बीसियों स्थानोंमें आई हैं। उपमा प्रसिद्ध पदार्थकी

ही दी जाती है, सबको अथवा बहुतोंको जो पता है किंवा जिसक विज्ञान सबको होना आवश्यक है उसीकी उपमा दी जाती है इसलिये वेदमें कपडा बुननेकी क्रियाओंकी उपमा जो स्थान स्थान पर आगई है, सिद्ध कर रही है कि वैदिक सभ्यतामें कपडा बुननेका काम घरेलु, होना संभवनीय है। देखिये इसविषयके प्रमाण—

(१२) कपडा बुननेकी विविध क्रियाओंकी उपमा।

अथर्व वेद (अ. १०।७।४२) में दिन रात्रीको ताने और बानेकी उपमा दी है। दिन ताना है और रात्री बाना है, इसप्रकार कालरूपी कपडा बुना जा रहा है। उपमा कितनी मनोरम और आल्हाददायक है, यदि कपडा बुननेका धंदा घरेलु, न हो तो यह उपमा सबके ध्यानमें नहीं आसकती। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि कपडा बुननेका काम अंशतः घर घरमें हो, यही वेदको अभीष्ट है। इस विषयमें और भी देखिये—

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः॥
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद्ब्राह्मणं महत्
॥ ३७ ॥ वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा
इमाः॥ सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं
महत्॥ ३८॥ अथर्व. १०।८

" जो (विततं सूत्रं) फैला हुआ ताना (विद्यात्) जानता है और उसमें ये सब प्रजायें (ओताः) बानेके समान भरीं हैं, यह जो समझता है, तथा सूत्रका सूत्र जिसको पता है वह (महत ब्राह्मणं) बडा ब्रह्म जानता है। मैं जानता हूं कि फैला हुआ

ताना क्या है, उसमें ये सब प्रजायें बानेके समान भरी कैसीं हैं, और जो सूत्रका सूत्र है, वह सब मैं जानता हूं, इसलिये बडा ब्रह्म भी मैं जानता हूं।"

यहां "विततं सूत्रं" शब्द तानेके लिये और "ओताः" शब्द बानेके लिये आया है, ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप और उसके साथ सृष्ट पदार्थोंका संबंध बतानेके लिये यह ताने और बानेकी उपमा यहां दी है। उपमा कितनी उत्तम और योग्य है, इसकी कल्पना सहृदय कवियोंको अच्छी प्रकार हो सकती है। बहुत स्थानपर कहा है कि परमेश्वर अथवा परब्रह्म सर्वत्र "ओतप्रोत" भरा है। देखिये—

स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ य. ३२।८

"वह प्रजाओंमें (ओतःप्रोतः) ताने और बानेके समान है।" वह परब्रह्म सब जगत्में वैसाही फैला है, जैसे कपडेमें ताने और बानेके लिये वर्ते हुए सूत्र फैले होते हैं। "ओत प्रोत" शब्दका मूल अर्थ "ताना और बाना" ही है। इसप्रकार अध्यात्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान बतानेके लिये कपडा बुननेके दृष्टांत वेदमें सर्वत्र हैं। जगदात्मा के लिये "सूत्रात्मा" इसी लिये कहते हैं, जैसे सूतका ताना और बाना बनाते हैं, उसी प्रकार सूत्रात्मा (आत्माका सूत्र) सब जगत्में ताने और बानेके समान सर्वत्र "ओत प्रोत" है। देखिये और—

रोहितो द्यावापृथिवी जजान ॥ तत्र तंतुं परमेष्ठी ततान ॥ अथर्व. १३।१।६

" रोहितने द्युलोक और भूलोक निर्माण किये, और उसमें परमेष्ठी प्रजापतिने (तंतुं) सूत्र-आत्मा फैलाया है। " यहां परमेष्ठीको जुलाहा माना है और वह सर्वत्र सूत्र फैलाकर यह जगत् रूपी कपडा बुनता है, ऐसा काव्यमय वर्णन किया है। तथा—

(१) यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ॥
ऋ. १०।५७।२

(२) ऋतस्य तंतुर्विततः पवित्र आ ॥ ऋ. ९।७३।९

(३) तंतुं तनुष्व पूर्व्यं ॥ ऋ. १।१४२।१

(४) ऋचः प्रांचस्तन्तवो यजूंषि तिर्यंचः ।
अथर्व. १५।३।६

(५) अच्छिन्नं तंतुमनु सं तरेम ॥ १ ॥
ततं तंतुमन्वेके तरन्ति ॥ २ ॥ अथ. ६।१२२

" (१) जो यज्ञका साधक तंतु (देवेषु आततः) सब देवोंमें फैला है। (२) सत्यका (पवित्रः तंतुः) शुद्ध तंतु फैला है। (३) सनातन तंतुको फैलाओ। (४) ऋग्वेदके मंत्र सीधे सूत्र हैं यजुर्वेदके मंत्र तिरछे सूत्र हैं, अर्थात् ऋग्वेद मंत्र तानेके समान और यजुके मंत्र बानेके समान हैं। (५) (अ-छिन्नं तंतुं) न टूटे हुए सूत्रको पकड कर हम सब तैरेंगे, इस फैले हुए सूत्रको पकड कर कई ज्ञानी तैर जाते हैं। "

इन मंत्रोंमें " तंतु " शब्द सूत्रका वाचक है। यह सूत्र आलंकारिक दृष्टिसे उस एक अद्वितीय शक्तिका वाचक है। उपमा स्पष्ट है, इस लिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

इन मंत्रोंका विचार करनेसे पाठकोंके मनमें यह बात आ चुकी होगी, कि कपडे बुननेके विविध अंगोंके दृष्टांत किस प्रकार वेद मंत्रोंमें हैं, और वे दृष्टांत किस प्रकार वक्तव्य बातका स्पष्टीकरण कर रहे हैं।

यह नियम है कि, जिसका दृष्टांत दिया जाता है वह बात, जिसके लिये उस दृष्टांतका उपयोग किया जाता है, उसकी अपेक्षा सरल, सुगम, सुबोध, सार्वत्रिक और सबके परिचयमें होती है। इसके अनुसार वेदके मंतव्यमें सूत्रका धंदा, अथवा सूत कांतनेका काम किंवा कपडा बुननेका व्यवहार सार्वत्रिक अर्थात् घर घरमें होनेवाला चाहिये; यह बात निःसंदेह सिद्ध हो गई है।

यद्यपि उक्त प्रमाण निःसंदेह हैं, तथापि यह साध्य बात सिद्ध करनेके लिये हम और भी प्रमाण देते हैं और उन सबका विचार करनेसे जो निर्विवाद सिद्ध होगा, वही हम मानेंगे, और पाठकोंको स्वीकार करनेके लिये कहेंगे। सूत कातनेका धंदा संपत्ति देनेवाला है, इसलिये वह काम सबको करना चाहिये, यह वेदका आशय है। देखिये—

(१२) संपत्ति देनेवाला सूत कातनेका काम है।

तंतुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व। यजु. १५।७

“ (रायः पोषेण तंतुना) धनका पोषण करनेवाले सूत्रसे धनकी पुष्टि प्राप्त करो। ” तंतु, तांता, सूत्र, धागा यह शब्द यहां आलंकारिक रीतिसे प्रयुक्त हुआ है। परंतु उसप्रयोगमें वेदने बताया है कि सूत्र कातना (रायः पोषः) धनको बढानेवाला है। यहां पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये कि उक्तमंत्रमें “ तंतु ” शब्द

" यज्ञ " वाचक है। जैसा यज्ञ आत्मिक संपत्ति बढाता है, ठीक उसी प्रकार यह सूत कातना भौतिक संपत्ति बढाता है, यही कहना वेदको यहां अभीष्ट है। दोनों स्थानोंमें दोनों " सूत्र " संपत्ति बढा रहे हैं। यह उपमा और शब्दोंका द्व्यर्थक प्रयोग यहां देखने योग्य है। वेदका उपदेश किस प्रकार स्थूलसे सूक्ष्मतक ले जाता है और किस अद्भुत रचनासे दोनों–स्थूल और सूक्ष्म–स्थानोंमें एक जैसे अर्थ बतानेवाले शब्दोंके उपयोग वेद करता है, यह बात इस मंत्रमें पाठक देखें, और वेदका अर्थ करनेकी रीति जानें। अस्तु।

इस मंत्रसे सिद्ध होता है कि सूत्र कातनेका काम धन संपत्ति बढानेवाला है; यही हेतु है कि जिस कारण सूत कातनेका काम हरएक घरमें अवश्य होना चाहिये। जिसको धन बढानेकी इच्छा हो वह सूत कातनेका काम करे! सबही मनुष्य अपना धन बढानेकी इच्छा करते हैं, इसलिये सबकोही यह सूत कातनेका काम करना आवश्यक है। घरमें स्त्रियां काम करतीं हैं, और बाहिर पुरुष कार्य करते हैं। इसलिये सीधी बात है कि पुरुषोंकी अपेक्षा घरमें रहनेवाली स्त्रियोंको फुरसतका समय अधिक मिल सकता है। इसलिये सूत कातनेका काम पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां अधिक कर सकती हैं। यही बात वेद कह रहा है—

(१४) स्त्रियोंके दो मुख्य कार्य।

(१) बालकका संवर्धन और (२) सूत कातना, कपडा बुनना।

देखिये निम्न लिखित मंत्रोंमें कैसे उत्तम काव्यरचनासे स्त्रियोंके दो मुख्य कर्तव्य बताये हैं—

ऋतायनी मायिनी संदधाते मित्वा शिशुं जज्ञतु र्वर्धयन्ती ॥ विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित् तंतुं मनसा वियन्तः ॥ ऋ. १०।५।३

"(ऋतायनी) सरल स्वभावसे युक्त (मायिनी) कुशल दो स्त्रियें, जिन्होंने (शिशुं जज्ञतुः) संतानको जन्म दिया है, वे उस अपने अपने पुत्रका (वर्धयन्ती) पालन करतीं हुई, (ध्रुवस्य चरतः विश्वस्य नाभिं) स्थिर और चर सबके बीचमें रहनेवाले (तंतुं) सूत्रका (कवेः चित् मनसा) कवीकी मनःशक्तिके साथ (वियन्तः) कपडा बुनती हैं और (मित्वा) प्रमाण लेकर (संदधाते) बीचमें जोडतीं भी हैं।"

यह मंत्र काव्यदृष्टिसे अत्यंत उत्तम और श्रेष्ठ प्रतिभासे युक्त है। इसका गूढ भाव संपूर्णतासे बतानेके लिये यहां स्थान नहीं हैं। परंतु थोडीसी कल्पना आनेके लिये कुछ शब्दोंका थोडासा विवरण करता हूं।

ध्रुवस्य चरतः नाभिं तंतुं वियन्तः।

ये शब्द ही मननके लिये लीजिये। कपडा बुननेके समय एक "ध्रुव तंतु" अर्थात् स्थिर धागा होता है और दूसरा "चर तंतु" अर्थात् हिलनेवाला तंतु होता है। जो लंबा ताना होता है, वह ध्रुव होता है और जो छोटा बाना होता है वह इदरसे उदर

और उदरसे इदर चलता है । स्थिर और चलके बीचमें एकही प्रकारका तंतु है । परंतु एकको ताना कहते हैं और दूसरेको बाना कहते हैं । और बुननेका काम इस प्रकार चलता है। दो स्त्रियां अपने अपने लडके की पालना करती हुई उक्त काम करतीं हैं। यह एक अर्थ हुआ।

दूसरा अर्थ यह है कि इस स्थिरचर विश्वके अंदर एकही सूत्रात्मा है, उसको लेकर द्यावापृथिवी ये दो स्त्रियें सूर्य और अग्नि-रूपी अपने अपने पुत्रोंकी पालना करती हुई, सृष्टिका कपडा बुनती हैं।

वेदके उपदेशकी गंभीरता और अद्वितीयता यहां पता लग सकती है। यदि पाठक संपूर्ण मंत्रका दोनों प्रकारका अर्थ जान सकेंगे तो अच्छा है, यहां प्रत्येक शब्दके सब अर्थ बनानेके लिये स्थान नहीं है, जो थोडासा दिग्दर्शन किया है, उसके विचारसे पाठकोंको थोडीसी कल्पना हो सकती है। अभी इसी लेखका बहुत कार्य अवशिष्ट है, इसलिये इसको यहांही छोडकर आगे बढना आवश्यक है। उक्त मंत्रमें कपडे बुननेका उपदेश करते हुए सृष्टिरचनाकी बातका दिव्य उपदेश वेदने दिया है । यह बात देखनेसे वेदके व्यापक उपदेशकी कल्पना हो सकती है। और एक मंत्र देखिये—

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना इंद्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः॥ अच्छिन्नं तंतुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तीः॥ यजु. २०।४३

“ (विश्व–तूर्तीः) सब प्रकारसे समर्थ (देवी भारती) मातृभूमी देवी, (इडा) मातृभाषा और (सरस्वती) मातृसभ्यता ये

(तिस्रः वर्धमानाः देवीः) तीनो बढनेवाली देवियाँ, (जनयः पत्नीः) संतान उत्पन्न करनेवाली पत्नियोंके समान (पयसा हविषा) दूध और हवनसे (इंद्रं जुषाणा) प्रभुकी पूजा करती हुई (अ-च्छिन्नं तंतुं) न टूटनेवाला सूत्र कातती हैं। "

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यता (Mother country, mother tongue & mother culture) ये तीनों देवियां प्रभुकी भक्ति करतीं हुई सूत निकालतीं हैं। अर्थात् परमेश्वर निष्ठापूर्वक मातृभूमिकी भक्ति करते हुए, मातृभाषा और अपनी सभ्यताका अभिमान धारण करके सूत्रका काम करना चाहिये। उक्त तीनों देवताओंसे सूत कातनेकी प्रेरणा होनी चाहिये, यह तात्पर्य है। अपना सूत्र स्वयं तैयार करनेसे तीनों देवियां संतुष्ट होती हैं इत्यादि भाव उक्त मंत्रका है। इस मंत्रमेंभी तंतु तथा देवतावाचक तीनों शब्द दो दो अर्थ बतानेवाले हैं। इस मंत्रमें यद्यपि यज्ञका भाव मुख्य और सूत्रका गौण है, तथापि दो अर्थ बतानेवाला "तंतु" शब्दका प्रयोग बता रहा है, कि सूत निकालनेकी सार्वत्रिकता वेदको अभीष्ट है।

इस मंत्रमें " देवीः अच्छिन्नं तंतुं " ये शब्द बताते हैं, कि " देवियां न टूटनेवाला धागा बनातीं हैं। " यज्ञविषयक अर्थ बताते हुएही मंत्रके ये शब्द सूत कातनेका काम देवियोंका है, ऐसा स्पष्ट बता रहे हैं। वेदमंत्रमें " इंगितार्थ"की योजना कैसी रहती है, यह बात इस मंत्रमें पाठक देख सकते हैं। इससे पूर्व जो मंत्र दिया है उसमें " दो स्त्रियें अपने बच्चेको संभालते हुए

सूत कातती हैं।" यह भाव आगया है। पाठक पूछेंगे, कि उनका—

(१५) चर्खा कौनसा है ?

उन दिव्य स्त्रियोंका वर्णन करते हुए वेदने निम्न लिखित मंत्रमें उनके चर्खे और सूतका उत्तम वर्णन किया है। देखिये वह मंत्र—

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ॥ नव्यं नव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अंतः कवयः सुदीतयः ॥ ऋ. १।१५९।४

" (ते) वे (मायिनः सु-प्र-चेतसः) कुशल और विचारशील (सुदीतयः कवयः) दानी कवि मिलकर (स-योनी सं-ओकसा) एक स्थानसे उत्पन्न हुई और एक घरमें रहनेवाली (जामी मिथुना) परस्पर संबंध रखनेवाली दो बहिनोंको—अर्थात् उनके कार्यको— (ममिरे) मिनते हैं और द्युलोकके समुद्रके बीचमें (नव्यं नव्यं तंतुं) नवीन नवीन सूत्र (आतन्वते) निकालते अथवा फैलाते हैं।"

इस मंत्रमें " कवयः नव्यं नव्यं तंतुं आतन्वते।" कहा है अर्थात् ज्ञानी " कवी नवीन सूत कातते हैं " अर्थात् घरमें जो स्त्रियां सूत निकालतीं हैं, उसका निरीक्षण, परीक्षण और मापन करते हैं और स्वयं नवीन नवीन सूत तैयार करते हैं। इस मंत्रका विचार करनेसे पता लगता है कि सूत कातनेका काम जैसा स्त्रियोंका है वैसा सूत फैलानेका काम पुरुषोंकाभी है। नवीन नवीन सूत्र बनाना और उसको फैलाना पुरुषोंका काम है।

इस मंत्रमें जो वर्णन है वह आलंकारिक है, इसकी सूचना " दिवि समुद्रे अंतः " इन शब्दोंद्वारा पाठकोंको मिलीही है। मंत्रमें जो काम वर्णन किया है वह " द्युलोकके समुद्रमें " चल रहा है। वहां कौन उक्त काम कर रहे हैं ? इसका उत्तर निम्न प्रकार है—

दानी कवि—तारागण, अग्नि आदि देवता इ०

दो बहिनें=द्युलोक और पृथिवी

चर्खा=सूर्य

सूत्र=किरण

स्थान=अंतरिक्ष

वस्त्र=दिनरातका काल

सूर्य रूपी चर्खे परसे एक मकानमें रहनेवाली दो बहिने सूत्र निकालतीं हैं, और उस सूतको ज्ञानी कवि सब जगत्के अवकाशमें फैलाते हैं। इस प्रकार छोटेसे मकानमें होनेवाले सूतसे कपडा संपूर्ण जगत् भरमें फैलाया जाता है।

बहिनें कौन हैं, वे एक मकानमें कैसीं रहतीं हैं, चर्खा कहां है, सूत कौनसा है, इत्यादि बातें अब स्वयं स्पष्ट हो जायगीं। सृष्टि-तत्त्वका वर्णन करते हुए, दृष्टांत और दार्ष्टांतकी योजनासे, विलक्षण साधर्म्यका वर्णन करते-हुए, वेद किस प्रकार सूत कातनेकी बात बता रहा है, इसका अद्वितीय वर्णन पाठक इस मंत्रमें अवश्य देखें। ये ही मंत्र हैं कि जो वेदकी वर्णनशैली बता रहे हैं। जो पाठक

इन मंत्रोंमें इस शैलीका भी अभ्यास करेंगे, उनको " वैदिक सूत्र विद्या " का पता लग जायगा और साथ साथ ही वेदकी प्रतिपादन शैली भी विदित होगी।

" वैदिक-सूत्र-विद्या " कहनेसे केवल कपडे बुननेकी विद्या इतनाही अर्थ वेदमें नहीं है। जिन पाठकोंनें सूत कातनेका काम बतानेवाले मंत्र—जो इस लेखनें दिये हैं—सूक्ष्म दृष्टिसे देखे होंगे, उनको पता लगाही होगा, कि आत्मविद्या, सृष्टिविद्या, वस्त्रनिर्माण विद्या आदि सबका एक समयही वेद उपदेश दे रहा है। मंत्रोंमें एक एक शब्द दो दो और तीन तीन अर्थोंके साथ प्रयुक्त हुए हैं, और स्थूल अर्थके साथ साथ सूक्ष्म भावका भी उपदेश होता है। जो पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंकी ओर देखेंगे उनको इस लेखसे अधिक लाभ होगा। इस लेखमें मंत्रका उतनाही भाव बताया जाता है कि जितना प्रकृत विषयके साथ संबंध रखता है, अस्तु।

उक्त मंत्रसे स्पष्ट पता लग जायगा कि सूत कातना, कपडा बुनना आदि काम कैसे घर घरमें होने वेदको अभीष्ट है। क्योंकि यह धंदा धन बढानेवाला है। अब विचार करना है कि जिसके पास अपना धन न हो, वह कैसा काम करे ? इसका उत्तर यह है कि—

(१६) बनियासे पैसा लेकर भी सूत्र बनाओ।

देखिये-इस विषयमें कैसा आलंकारिक वर्णन वेद कर रहा है और किस बातका इशारा दे रहा है——

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः ॥
ततं तंतुमचिक्रदः ॥ ऋ. ९।२२।७

" हे सोम ! (त्वं) तू (पणिभ्यः) बनियोंसे (वसु) धन और (गव्यानि) गौवें (आ धारयः) कर्जामें ली हैं, और (तंतुं ततं) सूत्र फैलाकर (अचिक्रदः) गाते हुए काम करता है । "

इस मंत्रके शब्द विशेषविचार करने योग्य हैं इसलिये यहां उनके अर्थ देता हूं—

धृ-(To owe anything to a person) देनदार होना, ऋणी होना, कर्जा लेना, किसीसे उधार पैसा लेना, धरना । कर्जदार होना ।

त्वं धारयः-तूने कर्जा लिया है ।

पणिः-बनिया (पणिर्वणिग्भवति । निरु-नै. २।५।२)

पणिभ्यः=बनियोंसे

वसु=धन, पैसा, रुपैया

बनियोंके पास, वैश्योंके पास (वसु, गव्यानि) धन दौलत और गौ आदि पशु होते हैं । इस लिये जिनके पास धन नहीं होगा और गौवें नहीं होंगी, उनको चाहिये कि वे बनियाके पास जांये और उनसे लेलें । और दोनोंका व्यवहार इमानदारीसे चलता रहे ।

प्रिय पाठको ! आप कृपया वेदकी एक खूबी इस मंत्रमें देखिये !

(१७) सोम देवता ।

उक्त मंत्र " सोम " देवताका है । क्यों कर्जा लेनेका उपदेश करनेके समयही सोमशब्दका प्रयोग किया है ! सोचिये तो सही । क्या इसमें गूढ भाव है ? क्या दूसरे देवताओंके शब्दों द्वारा इस बातका उपदेश नहीं हो सकता है ?

देखिये, इसमें हेतु है। "सोम" का अर्थ है "चंद्र" अथवा चांद। और चांद स्वयं-प्रकाशी नहीं है। जब वह सूर्य-रूपी साहुकारसे अथवा बनियेसे प्रकाशका कर्जा लेता है, तभी वह किरणोंके सूत्र फैलानेके योग्य बनता है। जिस समय सूर्य उसको कर्जा नहीं देता, उस समय उसका दिवाला निकल जाता है, उसी दिन उसको "ग्रहण" लग जाता है।

सूर्य स्वयं प्रकाशी है, सूर्यके प्रकाशसे चंद्र प्रकाशित होता है। साहुकार स्वयं धनी है और ऋण लेनेवाला परप्रकाशी है। क्या जगत्‌में चंद्रके सिवाय इतनी योग्य और सार्वकालिक उपमा ऋणी के लिये मिल सकती है? विचार कीजिये और इस शब्दयोजना का स्वारस्य जानीये। देखिये निम्न कोष्टक—

सूर्य	धनी, साहुकार
प्रकाश (रै, वसु)	धन
किरण (गावः)	गौवें
,, (तंतुः)	सूत्र, सूत
चंद्र (सोमः) पर प्रकाशी	ऋणी, कर्जदार दूसरेसे धन लेनेवाला

कर्जा लेनेवालेकी अवस्था कैसी होती है? चांदके समान हमेशा परस्वाधीन। कर्जा रहनेतक कभी उसको स्वातंत्र्य प्राप्त होना ही नहीं। परंतु लाचारीकी अवस्थामें कर्जा लेना ही पडता है, इसलिये वेदने मार्ग बताया है। जब ऐसी अवस्था आवेगी, तब जितना

आवश्यक है उतना कर्जा लो और सूतका धंदा करो और थोडे दिनोंमें कर्जा उतारो। हमेशा परस्वाधीन न रहो, यह यहां तात्पर्य है। क्यों कि हमारा आदर्श सूर्य है, उसके समान स्वावलंबनी तेजस्वी नेता बनना है, न कि सदा दूसरे पर ही अवलंबित रहना है।" अस्तु। उक्त प्रकार जो व्यवहार करता है उसको इतरोंने अवश्य सहायता करनी चाहिये। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ॥ उतमं मुत्तमाय्यम् ॥ ऋ. ९।२२।७

"(प्रवतः) समर्थ उच्च जो हैं वे (उत्तमं तंतुं तन्वानं) उत्तम सूत फैलानेवालेको (उत इमं उत्तमाय्यं) और इस उत्तम बननेवालेको (अनु आशत) अनुकूल सहायता करें, अथवा अनुकूलतासे प्राप्त हों।"

यह मंत्रभी सोमदेवताका ही है। "प्रवतः" का एक अर्थ पहाडकी चोटियां हैं और दूसरा अर्थ पहाडसे चलनेवाले झरने है। पहाडसे निर्झर निकलते हैं, और वे (सोम) वनस्पतियोंको पुष्ट होनेमें सहायता देते हैं। इसी प्रकार साहुकारोंसे धनके निर्झर निकल कर निर्धनोंके घरोंमें जाकर, वहां सूत कातना, कपडा बनाना आदि व्यवहारोंद्वारा वहांकी पुष्टि करनेवाले होने चाहिये।

"सोम" शब्दके दोनों अर्थ लेकर किस उपदेशकी ओर वेदने पाठकोंका चित्त आकर्षित किया है यह देखनेसे वेदके गूढ और गुह्य उपदेशके अनुभवसे चित्त चकित हो जाता है, हृदय

संद्रग होता है और वेदके समान वेद ही ज्ञानका महासागर है, ऐसे शब्द निकल आते हैं। इस मंत्रमें दो कार्य कर्ताओंका उल्लेख है—

(१) उत्तमं तंतुं तन्वानः ।=उत्तम सूत कातनेवाला।

(२) उत्तमाप्यः ।=उत्तम बननेका प्रयत्न करनेवाला।

ये दोनों प्रकारके मनुष्य श्रीमानोंकी सहायताके भागी हो सकते हैं। और धनिकोंको उचित है, कि सूतका काम करनेवाले पुरुषार्थी निर्धनोंको वे अवश्य सहायता करें।

इन मंत्रोंके अन्य अर्थोंका विचार उस उस प्रकरणमें किया जायगा। पाठकोंको यहां इतना ही बताना है कि वे इन मंत्रोंमें "सोम" देवताका भाव जानें, और देवताके स्वरूप समझनेका यत्न करें। जैसा भाव इस देवताके विषयमें यहां लेना है वैसा ही अन्य देवताओंके विषयमें यहां लेना होता है। आशा है कि इस विषयांतरके लिये पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

सूतके धंदेका इतना महत्व वेदने बताया है। घर घरमें यह काम होना चाहिये। अब यह सूत टूटनेवाला नहीं होना चाहिये इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(१८) सूत न टूटे।

सूत्र कच्चा नहीं होना चाहिये, पक्का और मजबूत होना चाहिये इस बातकी सूचनाकेलिये निम्न मंत्र है। देखिये—

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ॥ मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुरः ऋतोः ॥ ऋ. २।२८।५

इस मंत्रमें चार उपदेश है, उनको क्रमपूर्वक देखिये और उन-पर विचार कीजिये---

(१) रशनां इव आगः मत् वि श्रयाथ ।—रसीके समान बंधन करनेवाला पाप मेरेसे दूर चला जाये। अर्थात मैं निष्पाप होऊं।

(२) हे वरुण ! ते ऋतस्य खां ऋध्याम ।—तेरे सत्य नियमके अनुसार चलनेवाले इंद्रियकी पुष्टि करेंगे । अर्थात् सत्य नियमानुसार हृष्टपुष्टता प्राप्त करेंगे ।

(३) धियं वयतः मे तंतुं मा छेदि ।=बुद्धिके अनुसार कपडा बुननेवाले मेरा सूत न टूटे । अर्थात् कपडा बुननेके लिये सूत अच्छा मजबूत चाहिये, टूटनेवाला न हो । (Let not my thread, while weave this I work, be severed;)

(४) ऋतोः पुरा अपसः मात्रा मा शारि ।=समयके पूर्व कर्मका परिमाण क्षीण न हो (समयके अनुसार हमारेसे काम हो, थोडे कामके लिये अधिक समय न लगे । (Let not my works sum, before the time, be shattered)

यह मंत्र स्पष्ट है, इसलिये इसकी व्याख्या अधिक करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसी विषयके विषयमें अन्य बातोंके संबंधका विशेष विचार अभी बहुत करना है । जिस समय बुननेका धागा टूटनेका डर होता है अथवा कपडेकी बुनावट अधिक अच्छी दर्शनीय करनेके लिये दो अथवा तीन धागे इकट्ठे किये जाते हैं । इसके विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य है---

(१९) तीन गुणा धागा ।

(The triple twisted thread)

स सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत तंतुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ॥ नयनृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥ ऋ. ९।८६।३२

“ (सः यथा विदे) वह जैसा जानता है, उस प्रकार (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यप्रकाशके साथ, (त्रिवृतं तंतुं तन्वानः) तीन गुणा धागा फैलाता हुआ (परि व्यत) बुनता है । (ऋतस्य नवीयसीः प्रशिषः नयन्) सत्य धर्मके नवीन आशीर्वादोंको प्राप्त करता हुआ (जनीनां पतिः) स्त्रियोंका पति (निःकृतं उपयाति) किये हुए कर्मका फल प्राप्त करता है । ”

इस मंत्रमें “ त्रिवृतं तंतुं तन्वानः परिव्यत ” ये शब्द तीन गुणा धागा बनाकर कपडे बुननेका भाव बता रहे हैं । दुगणा अथवा तिगणा धागा बनाकर बुननेकी विद्या इस प्रकार वेद मंत्रोंमें सूचित की है । अब विचार करना है कि माया लगाकर सूतका उपयोग करनेका उल्लेख वेदमें है वा नहीं । सूतको सखत बनानेके लिये लाशा लगाते हैं । इस प्रकार लाशा अथवा माया लगानेसे सूत सखत हो जाता है, और खुड्डी पर काम करनेके समय टूटता नहीं । इस विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैं—

(२०) सूत पर लाशा लगाना ।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ॥

मूषो न शिस्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ॥ ऋ. १।१०५।८

"हे (शतक्रतो) इंद्र ! (सपत्नीः इव) अनेक पत्नियोंके समान ये (पर्शवः) शस्त्र (अभितः) चारों ओरसे (मा संतपंति) मुझे कष्ट देते हैं । तथा (मूपः शिस्ना न) चूहे जैसे लाशा लगाये हुए सूत्रको खाते हैं उस प्रकार (ते स्तोतारं मा) तेरा भक्त मैं हूं, उस मुझको (आध्यः व्यदन्ति) व्याधियां खा रहीं हैं ।

इसपर सायण भाष्य देखने योग्य है—"यथा मूषिकाः शिस्नानि कुविंदेन वायितान्यन्न रसेन लिप्तानि सूत्राणि भक्षयन्ति ।" जिस प्रकार जुलाहेने तैयार किया हुआ अन्नके रससे लिपटा हुआ सूत्र चूहे खाते हैं, उस प्रकार आधि व्याधियां मुझे खा रहीं हैं ।

इस मंत्रमें "शिस्न" शब्द "लाशा लगाये हुए सूत्र"का वाचक है। निरुक्तकार यास्काचार्य इस शब्दकी व्याख्या "अस्नात सूत्र" करते हैं। "स्नात सूत्र" और "अस्नात सूत्र" ये सूतोंके दो भेद हैं । पहिले जो सूत्र होता है उसको केवल सूत्र कहते हैं। तत्पश्चात् उस पर अन्नका रस, लाशा आदि लगाते हैं, उसको 'अस्नात सूत्र' कहते हैं, तदनंतर धोबी उसको धोता है, धोनेके पश्चात् वही "स्नात सूत्र" होता है । बाजारोंमें धोया हुआ कपडा और कोरा कपडा मिलता है। कोरा कपडा "अस्नात वस्त्र" कहलाता है, और धोया हुआ "स्नात वस्त्र" कहलाता

है। वास्तवमें भाषामें "शिस्न" शब्दका अर्थ पुरुषका जनन इंद्रिय है, परंतु वेदमें "लाशा लगाया हुआ सूत्र" ऐसा इसका अर्थ है। पाठक इस अर्थका स्मरण रखें। क्योंकि इस प्रकारके शब्दार्थ ही जनतामें अर्थ विषयक संदेह उत्पन्न करते हैं। साधारण लोग कहने लगते हैं कि देखो 'शिस्न' शब्दका ही कैसा अर्थ किया है, परंतु उनको पता नहीं होता कि सायनाचार्य यास्काचार्य आदि प्राचीन लोग भी येही अर्थ स्वीकार करते हैं।

उक्त मंत्रमें "बहुपत्नी" करनेका निषेध किया है। चारों-तर्फः शस्त्र रहनेसे जो कष्ट होना संभव है, वही कष्ट बहुत स्त्रियोंके पतिको होता है। इसलिये एकपत्नीव्रत रखना उत्तम है, यह मंत्रका तात्पर्य है। अस्तु।

उक्त मंत्रके "मूषः शिस्ना व्यदन्ति" ये शब्द सूत्रपर लाशा लगानेका भाव व्यक्त कर रहे हैं। इन शब्दोंका अर्थ यह है कि "चूहे लाशा लगाये सूत्रको विशेषतः खाते हैं।" इसलिये इस प्रकारके सूत्रको चूहोंके मुंहसे बचाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त "दीर्घतंतु" (ऋ. १०।६९।७) बडा लंबा धागा, "त्रितंतु" (ऋ. १०।३०।९) तीन सूतोंका बना-हुआ एक धागा, "त्रिवृतं सप्ततंतुं" (ऋ. १०।५२।४) तीन गुणा किये हुए सात तंतु, आदि शब्द बता रहे हैं कि, एकही सूत्रके ये विविध प्रकार हैं। बुननेके समय जो कुशलता जुलाहे बताते हैं, उस बातकी सूचना इन शब्दोंद्वारा मिलती है। सूतको रंग देनेकी कल्पना निम्न मंत्रसे व्यक्त होती है—

(२१) भूरे रंगवाला सूत्र ।

पिशंगे सूत्रे खृगलं तदा बध्नंति वेधसः ॥

अथ. ३।९।३

" (पिशंगे सूत्रे) भूरे रंगवाले सूत्रमें (वेधसः) ज्ञानी लोग (खृगलं) कुंची, बुर्श, झाड आदि (बध्नन्ति) बांधते हैं । "

इस मंत्रमें कहा है कि कुंची बांधनेका सूत्र भूरे रंगवाला होता है । इस मंत्रसे सूत्र रंगानेका भाव सूचित होता है ।

(२२) सूत किस पदार्थसे किया जाता है ?

उक्त मंत्रोंमें सूत्रका वर्णन आगया है, परंतु यह सूत्र किस पदार्थसे बनाया जाताथा, इसका कोई वर्णन नहीं है । इसलिये अब इस बातकी तलाश करनी चाहिये । इसका विचार करनेके समय पहिले यह बात मनमें आजाती है, कि बहुधा जहां सूत्रका वर्णन है, वहां कपासका सूत्र ही होगा । परंतु पता लगानेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि वेदके किसी मंत्रमें " कपास " के लिये कोई नाम नहीं है । खास कपासके किसी पदार्थका वर्णन वेदमें नहीं है । ऐतरेय ब्राह्मणमेंभी कपासके लिये कोई शब्द नहीं है । यदि कपासके सूतका वर्णन वेदमें होता तो किसी न किसी रूपसे कपासके लिये कोई शब्द वेदमें होता । परंतु इस समय तक बडा प्रयत्न करने परभी किसी वेद मंत्रमें कपासका वर्णन नहीं आया, और न कहीं कपासके लिये कोई शब्द दिखाई दिया है ।

यह हम नहीं कह सकते कि, वेदके संपूर्ण मन्त्रोंका विज्ञान हमें है । इतनाही नहीं परंतु हमको वेदके बहुतसे मंत्र अज्ञातही हैं ।

परंतु इस समयतक किसीने भी वेदमें कपासके किसी शब्दका दर्शन नहीं किया। वेदके शब्द सूचियोंमेंभी कोई शब्द, जिसका अर्थ कपास होता हो, ऐसा नहीं है। इसलिये वेदमें कपासका वर्णन इस समयतक नहीं पाया ऐसा हम कहते हैं। यदि स्वाध्यायशील पाठकोंमेंसे किसीको कपास वाचक कोई शब्द नजर आया, तो वह अवश्य हमें सूचना दें। उसके ज्ञानका बहुतोंको लाभ हो सकता है। आशा है कि विचारशील पाठक इस बातकी विशेष खोज करेंगे।

यहां एक बातका उल्लेख करना आवश्यक है, वह यह है कि युरोपीयन लोग तथा उनके अंधे भक्त हमारे देशी विद्वान् मानते और कहते हैं कि, ऋग्वेदका संग्रह पंजाबप्रांतमें सप्तसिंधुओंके अथवा पंचनदियोंके प्रदेशमें दश राजाओंके युद्धके पश्चात् हुआ, यजुर्वेदका संग्रह भारतीय युद्धके पश्चात् हुआ, इ० । यदि इनका कथन सत्य है और पंजाब निवासी आर्योंके बनाये हुए वेद हैं, तो उनमें कपासका नाम तक क्यों नहीं है? पंजाबमें कपासकी उत्पत्ति होती है। कपासकी उत्पत्ति करनेवालाही पंजाब देश है। यदि पंजाबके नदियोंके नाम वेदमें होनेसे वेद पंजाबी आर्योंका बनाया है, तो कपासका नाम न होनेसे वेदको ऐसे देशमें उत्पन्न हुआ मानना चाहिये कि जहां कपासकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस विषयमें युरोपियनोंकी युक्ति उनकेही विरुद्ध होकर उनके ही मतका खंडन करती है। तथापि अबतक किसीनें इस आपत्तिका निराकरण नहीं किया है।

' तर्प्य, तार्प्य ' आदि शब्द रेशीम, कोसा अथवा सनके बनाये कपडोंके वाचक हैं, ऐसा सब विद्वान मानते हैं। इन शब्दोंका वेदमें अस्तित्व है, इस लिये रेशीम, कोशा अथवा सनका अस्तित्व वेदमें माना जा सकता है । परंतु वेदमें जैसे " ऊन पशम, रोआं " आदिके लिये शब्द और उपमा आदि आते हैं, उस प्रकार न तो रेशीमके लिये कोई सूचना मिलती है और न कपासके लिये। इसलिये इसविषयमें अधिक खोज होनेकी आवश्यकता है।

इतने थोडेसे आंदोलनसे कोई यह न समझे, कि वेदमें ऊन, पशम आदिसे भिन्न किसी जातीके कपडोंका अथवा जिससे सूत बनाया जा सकता है ऐसे पदार्थका बिलकुल उल्लेख नहीं है। परंतु यही समझे कि इस समयतक कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है। अस्तु । अब ऊनके विषयमें वेदका वर्णन कैसा विस्तार पूर्वक है, यह देखना है।

(२३) ऊनका वर्णन । ॥ ४०७

(Wool)

नरम, मृदु स्पर्शके लिये ऊनकी उपमा वेदमें आती है। जैसा " ऊर्ण-म्रदा " (ऋ. ५।५।४) ऊनके समान मृदु (as soft as wool) इस मंत्रमें ऊनकी उपमा मृदुत्वकी दर्शक है । तथा—

ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि। य. २।२, ५।

" ऊनके समान मृदु तू है, तुझे फैलाता हूं।" इसमें भी वही बात वर्णन की है। ऊन जिससे पैदा होती है ऐसी भेड बकरीका संरक्षण करनेकी आज्ञा वेदमें है—

इममूर्णायुं०.........मा हिंसीः । य. १३।५०

" यह (ऊर्णा-युं) ऊन देनेवाला है, इसलिये.........इसकी हिंसा न कर । " मेड बकरीको न काटो अथवा ऊन देनेवाले प्राणीको न कष्ट दो । ऊन देनेवाले मेड आदिका दान भी वेदमें लिखा है—

शतं ते गर्दभानां शतमूर्णावतीनां । शतं दासाँ अतिस्रजः ॥ ऋ. ८।५६।३

" सौ गधे, ऊन देनेवाली सौ मेड, सौ दास दिये हैं । " इसमें ऊन देनेवाले सौ भेड दान देनेका उल्लेख है । दान देना उपयोगके लिये होता है । ऊन निकालकर उसका सूत्र बनाकर कपडे बुने और पहने, इसलिये यह दान होता है । अस्तु इसप्रकार ऊन देनेवाले पशुओंके दानका उल्लेख है । नदीके वर्णनमें भी ऊन जिसके पास होती है ऐसा वर्णन निम्न मंत्रमें आया है—

स्वश्वा सिंधुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ॥ ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥ ऋ. १०।७५।८

" यह (सिंधुः) नदी (सु-अश्वा) उत्तम घोडोंसे युक्त, (सु-रथा) उत्तम रथोंसे युक्त (सु-वासाः) उत्तम कपडोंसे युक्त, (हिरण्ययी) सुवर्ण युक्त (वाजिनीवती सुकृता) अन्नसे युक्त बनाई है । (ऊर्णावती) ऊन जिसके पास बहुत है, (सील-मावती) वृक्ष जहां बहुत हैं ऐसी वह (सु-भगा) उत्तम ऐश्व-

येयुक्त नदी (मधु-वृध) मीठास वढानेवाले ईख आदिको (अधि-वस्ते) पास रखती है । "

नदीके तट पर उत्तम घोडे हैं, रथ दौड रहे हैं, ऋषिमुनियोंके वस्त्र सूख रहे हैं अथवा जहां वस्त्र बनते हैं, जिसके रेतमें सुवर्ण मिलता है, जहां धान्य और ऊन बहुत पैदा होती है, वृक्षोंके जंगल जहां घने हैं और ईखके खेत जहां हैं ऐसी नदी है । अथवा होनी चाहिये । इस मंत्रमें नदीका विशेषण " ऊर्णा-वती " देखने योग्य है । ऊनसे युक्त, अर्थात् जहां ऊन बहुत पैदा होती है । नदी देवताका ही यह मंत्र है । नदीका ही नाम ऊनको दिया है-

श्रिये परुष्णीमुपमाण ऊर्णाम् ॥ ऋ. ४।२२।२

" (श्रिये) शोभाके लिये (परुष्णीं ऊर्णां) परुष्णी ऊनको (वसानः) धारण करता है । " अर्थात् परुष्णीके ऊनके कपडे पहनता है । तथा—

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुंध्यवः ॥

ऋ. ५।५२।९

" (ते) वे (परुष्ण्यां) परुष्णीमें (शुंध्यवः) शुद्ध होते हुए (ऊर्णां) ऊनके कपडोंको (वसत स्म) धारण किया करते हैं । " अर्थात् परुष्णीमें स्नान करके ऊनके कपडे धारण करते हैं । इस प्रकार ऊनके कपडों और ऊनका वर्णन वेद कर रहा है । इन मंत्रों और शब्दोंके गंभीर और गूढ भाव और होंगे, परंतु यहां इतनाही बताना है, कि इस प्रकार स्थान स्थानपर ऊनका

वर्णन विविध प्रकारसे आ रहा है, और कपास रेशीम आदिका वर्णन किसी स्थानपर इस समयतक देखनेमें नहीं आया। इतनाही नहीं परंतु ऊनके सूतकाभी नाम वेदमें है, देखिये—

(२४) ऊनका सूत।

सीसेन तंत्रं मनसा मनीषिणः ऊर्णा-सूत्रेण कवयो वयन्ति ॥ यजु. १९।८०

" (कवयः मनीषिणः) कवी मननशील लोग (मनसा) मनके साथ (सीसेन तंत्रं) सीसेके यंत्रके साथ ताना फैलाकर (ऊर्णासूत्रेण) ऊनके सूतसे (वयन्ति) कपडा बुनते हैं। " इस मंत्रमें " **सीस** " शब्दका अर्थ " सीसा, लोहा " इ० हो सकता है।

" **कवयः ऊर्णा-सूत्रेण वयंति** " कवि ऊनके सूतसे कपडा बुनते हैं। यह वाक्य इस मंत्रमें देखने योग्य है। इसमें जैसा ऊनके सूतका वर्णन है, वैसा किसी स्थानपर किसी अन्य कपास रेशीम आदिके सूतका वर्णन नहीं है।

इसलिये हम कोई नतीजा न निकालते हुए इतनाही लिखते हैं कि वेदमें ऊनका वर्णन बहुत है अन्य किसी पदार्थका, जिससे कि कपडे बुने जा सकते हैं, इतना वर्णन नहीं दिखाई देता है। आगे अधिक अभ्यास होनेके पश्चात् इस विषयका अधिक विचार होगा। अब इस विषयको यहांही छोड कर दूसरे विषयका विचार करना पडता है। क्यों कि इसका पूर्ण निश्चय करनेके लिये जितने प्रमाण

चाहिये उतने इकट्ठे नहीं होसके । इसलिये अब कपडे बुननेकी प्रक्रियाका विचार करेंगे ।

(२५) ताना और बाना ।

वेदमें " ओत प्रोत " शब्द ताने बानेके लिये आये हैं, यह बात पाहिले कही है । ताने बानेकी विधि जानना और न जाननेका उल्लेख निम्न मंत्रमें आगया है, वह यहां देखने योग्य है—

नाहं तंतु न विजानाम्योतुं न यं वयंति समरे
अतमानाः ॥ २ ॥
स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा
वदाति ॥ ३ ॥ ऋ. ६।९।२,३

" (अहं तंतुं न विजानामि) मैं ताना बनाना नहीं जानता, (न ओतुं) न बाना तैयार करना जानता हूं, (समरे अतमानाः) स्पर्धामें प्रगति करनेवाले (यं वयंति) जिसको बुनते हैं वह भी (न) नहीं जानता । (सः इत् तंतुं विजानाति) वह निश्चयसे ताना बनाना जानता है (स ओतुं) वह बाना भी जानता है और वह (ऋतुथा) ऋतुके अनुकूल (वक्त्वानि वदाति) भाषण करता है । "

" तंतु और ओतु " ताना और बाना बनानेकी विद्या जानना, और न जानना इस विषयमें वेदमें उक्त मंत्र हैं । जो नहीं जानता है वह जाननेवालेके पास जावे और उसका शिष्य बनकर वह विद्या सिखे । इस प्रकार गुरुशिष्य परंपरासे विद्याका प्रवाह चलता है । कपड बुननेकी विद्याभी इसी प्रकार वैदिक कालसे चली आरही है,

ताना बाना फैलानेका वर्णन निम्न मंत्रमें विशेप अलंकारके साथ है वह यहां देखने योग्य है—

(२६) कपडे बुननेके व्यवसायका वर्णन।

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान् वितत्ने अधि-नाके अस्मिन् ॥ इमे मयूखा उपसेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥ ऋ. १०।१३०।२

" (पुमान् एनं तनुते) एक मनुष्य इस तानेको फैलाता है, दूसरा मनुष्य बानेको (उत्कृणत्ति) खोलता है, इस प्रकार (अस्मिन् न+अ+के) इस सुखदायक स्थानमें ये (वितत्ने) विशेष रीतिसे सूत्र फैलाते हैं। (इमे मयूखाः) ये खुंटियां हैं जो (सदः उप सेदुः ऊ) बुननेके स्थानमें लगाई हैं, और (सामानि तसराणि ओतवे चक्रुः) सुखदायक नाले अथवा घडकियां हैं जो बानेके लिये बनाइ हैं। "

कपडे बुननेके कारखानेमें कई लोग ताने फैलाते हैं, दूसरे कई नौकर होते हैं जो बानेके लिये सूत तैयार करते हैं, तीसरे होते हैं जो सूतको सुखाने आदिके लिये फैलाते रहते हैं, चौथे प्रकारके लोग खुड्डी आदिकी खुंटीयां ठीक ठाक करते रहते हैं, और कई कुशल कारीगर नालें और घडकियां उत्तम बनाते हैं और कई उनको उत्तम रीतिसे बरतते हैं। इस मंत्रका वारंवार विचार करनेसे स्पष्ट पता लग जाता है कि जैसा कपडा बुननेके स्थानका ही वर्णन किया जाये, ऐसाही इस मंत्रमें किया गया है। कपडा बुननेके कारखानेमें इस प्रकार व्यवस्थित काम होता रहेगा तो थोडे मनु-

अभी अल्प अवधीमें श्रमविभाग और कार्यविभागके तत्वसे बहुत काम कर सकते हैं। वेदका उपदेश कैसा हुआ करता है, इसका उदाहरण इस मंत्रमें पाठक देख सकते हैं । यद्यपि यह मंत्र किसी दूसरे प्रयोजनके लियेही वेदमें है, तथापि सब बातें कपडा बुननेकी ही उत्तम प्रकारसे लिखीं है, यही बात इसमें विशेष रीतिसे देखने योग्य है। अब और वेदके विलक्षण अलंकारकी खूबी निम्न मंत्रमें देखिये--

(२७) आयुष्यका वस्त्र ।

यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरसः उपसेदुर्वसिष्ठाः॥

ऋ. ७।३३।९

" (अप्सरसः वसिष्ठाः) जलाश्रित प्राण (यमेन ततं परिधिं वयंतः) यमने फैले हुए तानेकी मर्यादा तक आयुष्यका कपडा बुनते हैं। " इसमें निम्न बातें देखने योग्य हैं—

यम=आयुष्यका ताना फैलाने वाला

ताना=आयुष्यकी अवधि, आयुर्मर्यादा

प्राण=कपडा बुननेवाले जुलाहे

कपडा=आयुष्य

मनुष्यका आयुष्य यह एक कपडा है, वह इस मनुष्यके देह रूपी खुड्डीपर बुना जाता है। यहां जुलाहे प्राण हैं। आयुष्यका ताना फैलानेवाला यम है। वह जितना लंबा ताना फैलाता है उतना ही लंबा कपडा ये जुलाहे बुन सकते हैं। (अप्-सरसः

पानीके साथ संचार करनेवाले। (वसिष्ठाः) शरीरका निवास करनेवाले प्राण हैं । " आपोमयः प्राणः " ऐसा उपनिषद् आदि ग्रंथोंमें कहाही है ।

कितनी उत्तम उपमा इस मंत्रमें दी है । जो इसका रस लेंगे वे क्षणमात्र तल्लीन हो जांयगे, वे वेदकी अद्भुत रचनाका अवश्यही आश्चर्य करते हुए आनंदमें मग्न होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं । इस प्रकार मनन होनेसेही वेदका अगाध गुह्य ज्ञान थोडासा ध्यानमें आजाता है । अब और दूसरी एक बात देखिये—

(२८) माता अपने पुत्रके लिये कपडा तैयार करती है ।

वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ॥ ऋ. ५।४७।६

(१) मातरः पुत्राय वस्त्रा वयन्ति ।=मातायें अपने पुत्रके लिये कपडे बुनतीं हैं । और—

(२) अस्मै धियः अपांसि वि तन्वते ।=इस बच्चेके लिये सुविचारों और सत्कर्मोंका उपदेश देतीं हैं ।

यह मंत्र पुत्रविषयक अथवा संतानविषयक माताओंका कर्तव्य बता रहा है । माताएं अपने पुत्रके लिये कपडा बुनतीं हैं, इसमें प्रत्येक धागेके साथ कितना प्रेम उस कपडेके तंतुओंमें बुना जाता हैं, इसका विचार पाठक ही कर सकते हैं । वेदकी शिक्षा है कि अपने पुत्रके लिये जो कपडा चाहिये वह मातायें स्वयं बनावें और

स्वयं अपने मेहेनतसे बनाहुआ कपडाही बच्चेको पहनायें। तथा साथ साथ माताको उचित है कि, वेह अपने बच्चोंको उत्तम विचार और उत्तम सत्कर्म करनेकी शिक्षा दें। जो शिक्षा माता दे सकती है वह पिता नहीं दे सकता, और जो मातापिताओंके द्वारा मिल सकती है वह गुरु और अध्यापकोंके व्याख्यानोंसे कदापि नहीं मिल सकती। यह वेदका उपदेश सब गृहस्थियोंको सदा ध्यानमें रखना उचित है।

कपडा बुननेका काम तथा उसके पूर्व जो जो काम आवश्यक हैं वे सब, अर्थात् कपास, ऊन, रेशीम आदि ठीक करना, कपासके बीज दूर करना, उसको सूत बनाने योग्य बनाना, चर्खेपर सूत कातना, सूतको लाशा आदि लगाना, अथवा सूतको दुगणा, तीन गुणा आदि बनाना, पश्चात् ताने बाने तैयार करना और उसका कपडा बुनना, ये सब काम घरेलु ही हैं, यह बात इस मंत्रसे सप्रमाण सिद्ध हो गई है। "माताएं अपने पुत्रके लिये कपडे बुनतीं हैं, और पुत्रको सद्विचार और सत्कर्मकी शिक्षा देतीं हैं" यह वेदका कथन यदि धार्मिक सत्यसे परिपूर्ण है, तो कपडा बुननेकी प्रक्रिया सबकी सब घर घरमें ही होनी आवश्यक है।

वैदिक कालकी माताएँ अपने पुत्रके लिये आवश्यक कपडे स्वयं बुनती रहीं हैं, और आजकलकी माताएँ पुत्रके लिये कपडे बझारसे खरीद रहीं हैं, ये दो चित्र देखिये; और प्रिय पाठको! अपने ही मनमें निश्चय कर लीजिये कि कौनसी माता श्रेष्ठ है? आपके मतसे

जो माता श्रेष्ठ होगी वैसी माताएँ अपने देशमें बनानेके लिये आप प्रयत्न कीजिये !

(२९) पिताका भी वही काम है।

इमे वयंति पितरः। ऋ. १०।१३०।१

" ये पिता (वयंति) कपडा बुनते हैं। " यद्यपि यहां इस मंत्रका अलंकार अन्य प्रयोजनके लिये है, जिसका विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण इसी लेखमें आगे होनेवाला है, तथापि इस मंत्रसे पिताओंका भी कपडे बुननेका काम है, यह बात निःसंदेह सिद्ध है। उपमा तथा अन्य अलंकार जो काव्योंमें होते हैं वे अपना उद्देश पूर्ण करते हुए सामान्य बातकी भी सिद्धि करते रहते ही हैं। इस नियमानुसार उक्त बातकी सिद्धि उक्त मंत्रसे होती है।

(३०) मातृभूमिके भक्तोंका कर्तव्य।

स्वदेशी पोशाक।

जो मातृभूमिके भक्त होते हैं उनका कर्तव्य है कि वे अपने अन्न और अपने वस्त्रकी व्यवस्था स्वयं करें, इस विषयमें कभी पराधीन न हों। इस विषयमें वेदका उपदेश स्पष्ट है। वेदमें " वर्ष-निर्णिजः " शब्द स्वदेशी कपडेके लिये आता है। संस्कृत भाषामें " वर्ष " शब्द देशवाचक प्रसिद्ध ही है। " भारत-वर्ष " भारतीयोंका देश है, इसी प्रकार हरिवर्ष आदिशब्द देशवाचक हैं। " निर्णिज् " शब्द पोशाक, पहनाव, वस्त्रालंकार आदिका द्योतकभी प्रसिद्ध ही है। तात्पर्य " वर्ष-निर्णिज् "

शब्दका अर्थ " स्वदेशी पोशाक, स्वदेशमें तैयार हुए वस्त्रालंकार इ." है। इस शब्दके अन्य अर्थ बहुत हैं, परंतु मनुष्यवाचक मंत्रोंमें इस शब्दका यही अर्थ है, इसविषयमें कोई संदेह नहीं है। इस संबंधमें निम्न मंत्र देखिये—

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय: आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ॥ ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न ह्वेषक्रतवः सुदानवः ॥ ऋ. ३।२६।५

" (अग्नि–श्रियः) अग्निकेसमान तेजस्वी, (सु–दानवः) अत्यंत दानशील, (सिंहाः न ह्वेषक्रतवः) सिंहकेसमान गंभीर शब्द करनेवाले, (स्वानिनः) और गर्जना करनेवाले (रुद्रियाः) भयंकर (विश्व–कृष्टयः * मरुतः) सब मनुष्य जो मरनेके लिये तैयार वीर (वर्ष–निर्णिजः) स्वदेशका पोशाक करनेवाले हैं, उनसे (त्वेषं उग्रं अवः) तेजोमय उग्र संरक्षणका बल (वयं आ ईमहे) हम प्राप्त करते हैं।"

यह मंत्र " मरुत् " देवताका है। मरुत् देवताके मंत्रोंमें शूर वीरोंका और सैनिकोंका वर्णन हुआ करता है। इंद्रके ये सैनिक हैं, इस लिये वीरोंके धर्म मरुत्के मंत्रोंमें वेदने बताये हैं। मरुत् शब्द वायुवाचक प्रसिद्ध ही है। वायुमें प्राणवायु जो है, वह दूसरे प्राणियोंका संरक्षण करनेके लिये अपना जीवन अर्पण करता है। यही कार्य वीर पुरुष अपने देशमें करते आये हैं। जनताके

* मरुत्=जो दूसरोंके हितके लिये मरनेको तैयार हैं। " म्रियन्ते इति मरुतः "।

हितके लिये अपना जीवन देना यह गुण, वायु, मरुत्, और वीरोंमें समान है। तात्पर्य जिस समय मरुतोंके मंत्र मानवी वीरोंके कर्मका उपदेश करते हैं उस समय उन मंत्रोंके शब्दोंका भाव मनुष्योंके कर्मोंके अनुरूपही हुआ करता है। परंतु जिस समय वह मंत्र वायुवाचक होगा उस समय उन शब्दोंके अर्थ भिन्न होंगे।

पूर्वोक्त मंत्रमें "विश्व-कृष्टयः" शब्द "सब मनुष्य" अर्थात् मनुष्य समाज, जनता आदि भाव बता रहा है। "कृष्टि" शब्द कृषक, किसान, खेती करनेवाला इसी अर्थमें है। "विश्व-कृष्टि" का अर्थ संपूर्ण किसान, किंवा राष्ट्रके सब लोग, येही "मरुतः" हैं। और ये "वर्ष-निर्णिजः" अपने देशका कपडा पहनते हैं। इस लिये उनके तेजको हम स्वीकारना चाहते हैं, यह मंत्रका तात्पर्य है। क्यों कि जो वीर स्वावलंबनशील होते हैं, उनमें ही विलक्षण तेज होता है। इसी विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ॥ पिशंगाश्वाः अरुणाश्वाः अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥

ऋ. ५।५७।४

"(वात-त्विषः) वायुके समान बलिष्ठ, (यमा इव सुसदृशः) जोडेके समान एक जैसे दिखाई देनेवाले, (सु-पेशसः) सुंदर रूप-वाले (पिशंगाश्वाः अरुणाश्वाः) भूरे और लाल रंगोंके घोडोंपर बैठनेवाले, (अ-रेपसः) निष्पाप (प्र-त्वक्षसः) विशेष शक्तिमान

(वर्ष–निर्णिजः मरुतः) स्वदेशी कपडे पहनेवाले मरनेके लिये तैयार वीर हैं, इस लिये वे (महिना द्यौः इव उरवः) महिमासे द्युलोकके समान विशाल हैं। "

इस प्रकार मनुष्य वाचक मरुद्देवताके मंत्रोंका भाव है। जो इनके अन्य प्रसंगोंके भाव हैं, उनका यहां विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वदेशके पदार्थोंका ही स्वीकार करना वीरोंका एक मुख्य गुण है। मरुतोंके मंत्रोंका इस प्रकार उपयोग होता है वा नहीं इस विषयमें कई मनुष्य शंका करेंगे, इसलिये मरुत्सूक्तोंके कई शब्द निम्न स्थानमें देता हूं—

(१) स–जोषसः=(ऋ. ५।५७।१)=जोशीले,

(२) मनीषिणः=(ऋ. ५।५७।२)=मननशील,

(३) सुधन्वानः, इषुमन्तः=(ऋ. ५।५७।२)=उत्तम धनुष्यबाण धारण करनेवाले,

(४) स्वश्वाः, सुरथाः=(")=उत्तर घोडे और रथ जिनके पास हैं,

(५) पृश्नि–मातरः=(")=भूमिको माता माननेवाले,

(६) सु–आयुधाः=(")=उत्तम शस्त्रोंसे युक्त,

(७) जनुषा सुजातासः[1]=(ऋ. ५।५७।५)=जन्मसे उत्तम कुलमें जन्मे हुए।

---

१ सुजातासः=सु+जात=उत्तम कुलमें जन्मा हुआ। उत्तम मातापिताके शुद्ध वीर्यसे उत्पन्न हुए। इस "सुजात" शब्दके साथ आजकलका "बद्‌जात" शब्द देखिये क्या बता रहा है।

(८) अंसेषु ऋष्टयः=(ऋ. ५।५४।११)=कंधोंपर जिन्होंने शस्त्र धारण किये हैं। " ऋष्टि " का अर्थ तलवार, भाला, बरच्छी है।

इस प्रकार मरुतोंके सैंकडों विशेषण हैं जो वीरोंके गुण बता रहे हैं और जो मानवी वीरोंमें ही अन्वर्थक हो सकते हैं। मेरे खयालमें आशंका करनेवालोंके लिये इतने प्रमाण पर्याप्त हैं। जिनका समाधान इतने प्रमाणोंसे न होगा, उनका समाधान स्वतंत्र लेखद्वारा किसी अन्य प्रसगमें अवश्य किया जायगा। इस लेखका विषय भिन्न है इसलिये यहां अधिक विषयांतर करना योग्य नहीं है। अस्तु। इतने विचारसे पाठकोंके मनमें यह बात आगई ही होगी कि, " वर्प-निर्णिजः " के अनेक अर्थोंमें एक अर्थ " स्वदेशी कपडा पहननेवाले " यह भी है। इतनाही प्रस्तुत लेखमें हमें अभीष्ट है। " निर्णिज् " शब्द वेदमें ही कपडोंका वाचक है देखिये—

शुक्रां वयंत्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥

ऋ. ९।९९।१

" (विपां अग्रे) बुद्धिवानोंके भी जो अग्रभागमें रहते हैं ऐसे (महीयुवः) मातृभूमिके साथ संयुक्त होनेवाले (असु-राय) जीवनका दान करनेवाले श्रेष्ठके लिये (शुक्रां निर्णिजं) पवित्र कपडा (वयंति) बुनते हैं। "

शुक्रां निर्णिजं वयंति=They weave bright raiment. वे चमकदार कपडा बुनते हैं।

महो-युवः=भूमि (मही) की पूजा करनेवाले। मातृभूमिके उपासक। भूमिके साथ जिनका स्थिर संबंध बनचुका है।

इसप्रकारके मातृभूमिके उपासक वीरोंको देनेके लिये उत्तम कपडा बुनते हैं। तात्पर्य कपडा बुनना, अपना कपडा स्वयं तैयार करना यह काम मातृभूमिके भक्तोंका है, इसमें कोई संदेह नहीं है। काम करते करते मनुष्य थक जाता है, और कपडा बुननेका काम किसीसमय एकही दिनमें नहीं समाप्त हो सकता, उस अवस्थामें क्या करना चाहिये, इसका स्पष्ट उपदेश पाठक निम्न मंत्रमें देख सकते हैं—

पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधा-
च्छक्म धीरः ॥ ऋ. २।३८।४

"(धीरः) धैर्यशाली पुरुष (शक्म) समर्थ होनेपरभी (कर्तोः मध्या न्यधात्) कामके बीचमेंही छोडकर चला गया, उस (विततं) फैले हुए तानेके ऊपर (वयन्ती) कपडा बुननेवाली (पुनः समव्यत्) फिर उत्तम प्रकारसे बुनती है।"

What was spread out she weaves afresh, reweaving: the skilful leaves his work half-completed.

यदि किसीका कपडा बुननेका अथवा दूसरा कोई काम अधूरा रह गया, तो उसको दूसरा मनुष्य पूर्ण करे। इसमें यह भाव है कि पुरुषके किये हुए कामको स्त्री समाप्त करे, अथवा स्त्रीके कामको पुरुष समाप्त करे। तात्पर्य स्त्री और पुरुष प्रत्येक मकानमें कपडा

बुननेके कार्यमें ऐसे प्रवीण रहें कि किसीकाभी अधूरा रहा हुआ कार्य दूसरा उत्तम प्रकारसे समाप्त कर सके।

ये सब मंत्र देखनेसे पता लगता है कि वेदकी इच्छाके अनु- सार यह कपडा बुननेका काम घर घरमें होना चाहिये। अर्थात् हरएक घरमें फुरसतके समय करनेका यह कामधंदा है। जिस समय जिसको फुरसत मिलेगी, उस समय वह अपने योग्य काम करेगा। यह वेदका तात्पर्य दिखाई देता है। सूत कातनेसे लेकर कपडे बुनने तकके सबही व्यवहार शनैः शनैः घर घरमें होते रहें और फुरसतके समय हरएक मनुष्य अपना अपना काम करता रहे यह वेदका संदेश सब मनुष्योंके लिये है। इसका हरएक अवश्य विचार करे।

(३१) कवि और जुलाहे।

काव्य करना और वस्त्र बुनना।

वेदमें काव्य करनेकी तुलना कपडा बुननेके साथ की हुई है, वह भी यहां देखने योग्य है। जिस प्रकार कवि स्थान स्थानके शब्द लेकर काव्य बनाते हैं, उसी प्रकार भिन्न भिन्न सूत्रोंको लेकर जुलाहे कपडे बुनते हैं।। देखिये इस उपमाके मंत्र—

उभा उ नूनं तदिदर्थयेते वितन्वाथे धियो वस्त्राऽ-
पसेव ॥ ऋ. १०।१०६।१

"(उभा उ नूनं) आप दोनों सचमुच (तत् इत् अर्थयेते) वही चाहते हैं, और (धियः वितन्वाथे) स्तोत्र अथवा सुविचार किंवा काव्य फैलाते हैं, जैसे (अपसा वस्त्रा इव) जुलाहे वस्त्र

फैलाते हैं। " इसमें सुविचार फैलानेके साथ ताना फैलानेकी तुलना की है। (Ye weave your songs as skilful men weave garments.) इस मंत्रका भाव यह है कि, जैसे आप काव्य बनाते हैं वैसे जुलाहे कपडे बुनते हैं। कितनी उत्तम उपमा है! और देखिये—

वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ ऋ. ५।२९।१५

" (धी-रः) बुद्धिमान (सु-अपाः) अपने कर्ममें कुशल (वसु-युः) धनकी इच्छा करनेवाला कारीगर (सुकृता भद्रा वस्त्रा इव) जिसप्रकार उत्तम सुंदर वस्त्र तैयार करता है, अथवा तखाण (रथं न) जैसा रथ तैयार करता है, उसीप्रकार (अतक्षं) मैं भी बनाता हूं। "

इस मंत्रमें कपडे बुननेके लिये किन किन गुणोंकी आवश्यकता है इसकी भी सूचना मिलती है। (१) धी+रः=बुद्धिमत्ता चाहिये। यह पहिला गुण है। सर्व साधारण कारीगरीके लिये इसकी आवश्यकता है। (२) सु+अपाः=उत्तम रीतिसे अपना कार्य परिपूर्ण करनेका चातुर्य चाहिये। कार्यको कैसी भी समाप्ति करनेका भाव यहां नहीं है, प्रत्युत प्रारंभ किये हुए कार्यको सबसे उत्तम ढंगसे पूर्ण करनेकी कुशलता उक्त शब्दद्वारा सूचित होती है। (३) सु-कृता=उत्तम साधनोंके साथ उत्तम विधिसे कार्यको उत्तम सिद्ध करनेका भाव इस शब्दमें है। (४) भद्रा=कल्याण करनेवाला कार्य करनेका भाव इसमें है। ये सब शब्द यद्यपि

सामान्य श्रेष्ठ गुण बतानेवाले हैं तथापि प्रकृत विषयमें कपडे बुननेके कार्यके लिये आवश्यक गुण बता रहे हैं। बुद्धिमत्ताके साथ उत्तम कुशलतासे, उत्तम साधनोंके द्वारा कल्याणकारक वस्त्र बनाने चाहिये, ऐसा करनेसे ही (वसु-युः) धन मिलता है। यदि पाठक इन शब्दोंका विचार अधिक करेंगे, तो उनको और भी बोध मिल सकता है।

(३२) स्त्रियोंका काम।

यज्ञके लिये विशेष प्रकार कपडा बुनना।

प्रत्येक संस्कार और धर्म विधिके लिये, तथा प्रत्येक सामाजिक और राजकीय महोत्सवोंके लिये अलग अलग प्रकारके कपडे होते हैं। प्रत्येक कार्यके लिये जो कपडा होता है, उसकी बनावट और रंग आदि भी भिन्न प्रकार की होती है। आजकल एक ही प्रकारका कपडा पहन कर सब ही कार्य किये जाते हैं, परंतु यह उचित नहीं है। यज्ञके समय पहननेका कपडा " यज्ञस्य पेशः " (The cloth for sacrifice) शब्दसे वेदमें प्रसिद्ध है। देखिये निम्न मंत्र—

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते॥ तंतुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती॥ ऋ. २।३।६

" (यज्ञस्य पेशः) यज्ञका कपडा तैयार करनेके लिये (ततं तंतुं) तने हुए तानेको (समीची सं-वयन्ती) मिलजुल कर बुननेवाली (वय्या इव) जोलाही स्त्रीके समान; (सनता उक्षिते)

सदा सुपूजित (सुदुघे पयस्वती) उत्तम दूध देनेवाली (रण्विते) आनंद दायक (उषासानक्ता) सवेर औ शाम ये दो स्त्रियां (नः साधु अपांसि) हमारे लिये उत्तम काम करतीं हैं। "

इस मंत्रमें निम्न वाक्य देखने योग्य हैं—

(१) यज्ञस्य पेशः समीची संवयन्ती ।=यज्ञकेलिये विशेष प्रकारका कपडा स्त्रियां मिलजुल कर बुनतीं हैं।

(२) वय्या ततं तंतुं संवयंती ।=कपडा बुननेवाली स्त्री फैले हुए तानेको उत्तम प्रकारसे बुनती है। अथवा तानेका कपडा तैयार करती है।

यज्ञका कपडा बनानेके लिये विशेष कुशल स्त्रियोंकी कारीगरी काममें आती है यह बात इस मंत्रमें स्पष्ट है।

(३३) जुलाहा ऊनके कपडे बुनता है।

इस समयतक स्त्रियोंका संबंध कपडे बुननेके कार्यके साथ हमने देखा। इन मंत्रोंके बलसे कई कह सकते हैं कि, कपडे बुननेका काम केवल स्त्रियोंकाही है, पुरुषोंका नहीं। इस विषयका किंचि-न्मात्र ऊहापोह इस लेखके पूर्व विभागमें किया गया है, परंतु यहां स्पष्ट मंत्रके द्वारा बताना है कि पुरुषोंकाभी कपडे बुननेका व्यवसाय है। देखिये निम्न मंत्र—

वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥ ऋ. १०।२६।६

" (वासो-वायः) कपडे बुननेवाला जुलाहा (अवीनां वासांसि) भेड बकरियोंकी ऊनके कपडे बुनता है और (आ मर्मृजत्) उनको उत्तम सुंदर बनाता है। "

इस मंत्रमें " वासो-वायः " यह शब्द जुलाहेका वाचक है। पूर्वमंत्रमें " वय्या " शब्द जोलाही स्त्रीका वाचक है। अर्थात् ये दोनों शब्द स्त्रियों और पुरुषोंके वाचक होनेसे कपडे बुननेका काम दोनोंका है, इस बातकी सिद्धि करते हैं। इस मंत्रके साथ निम्न मंत्र देखिये—

सीसेन तंत्रं मनसा मनीषिणः ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ॥ य. १९।८०

" (मनीषिणः कवयः) मननशील कवी (ऊर्णासूत्रेण) ऊनके सूत्रके साथ (मनसा) मन लगाकर (तंत्रं वयंति) तानेपर कपडा बुनते हैं। "

ऊनके सूत्रके साथ कपडा बुननेका भाव इस मंत्रमें स्पष्ट है। कवी लोग अर्थात् पुरुष बुनते हैं। इसप्रकार कपडे बुननेका काम पुरुषोंका है, यह भाव बतानेवाले अनेक मंत्र हैं। ताना बनानेका काम विशेषतः स्त्रियोंकाही प्रतीत होता है, देखिये निम्न मंत्र—

(३४) ताना बनानेका काम।

स्त्री पुरुषोंका मिलकर महत्वपूर्ण कार्य।

सरी स्तंत्रं तन्वते। ऋ. १०।७१।९

" (सरीः) सूतका काम करने वाली स्त्री (तंत्रं तन्वते) ताना फैलाती है। " किंवा खुड्डीपर सूत्रोंसे कपडा बुनने योग्य ताना भरती है। इसी मंत्रके साथ निम्न मंत्र देखिये—

तंत्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखं ॥ प्रान्या तंतूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृंजाते

न गमातो अंतम् ॥ ४२ ॥ तयोरहं परिनृत्यन्तो
रिव न विजानामि यतरा परस्तात् ॥ पुमानेन-
द्वयत्युद्गृणात्ति पुमानेनद्विजभाराधि नाके ॥४३॥
अथर्व–१०।७

" (एके वि–रूपे युवती) अकेली अकेली भिन्न रंगरूपवाली दो स्त्रियां क्रमशः (पट्–मयूखं तंत्रं) छः खूंटियोंवाले तानेके पास (अभ्या क्रामं) आतीं हैं और (अन्या) उनमेंसे एक स्त्री (तंतून् प्रतिरते) सूत्रोंको खींचती है और (अन्या घत्ते) दूसरी सूत्रोंको रखती है। उनमेंसे कोईभी (न अप वृंजाते) काम खराब नहीं करतीं और (न अंतं गमातः) न समाप्ती करतीं हैं। परंतु हमेशाही अपना काम करतीं रहतीं हैं। "

" (तयोः परि नृत्यन्तोः इव) नाचनेवाली स्त्रियोंके समान काम करनेवाली उन दो स्त्रियोंमें (यतरा परस्तात्) कौन स्त्री पहिली और कौन स्त्री दूसरी है, यह (अहं न विजानामि) मैं नहीं जानता। इनके अतिरिक्त (पुमान् एनत् वयाति) एक पुरुष इस थानेको बुनता है, तथा दूसरा (पुमान् एनत् उद्गृणत्ति) पुरुष इसको अलग कर रहा है और तीसरे (पुमान् एनत् नाके अधि विजभार) मनुष्यने इसको उत्तम स्थानमें फैलाया है। "

ये मंत्र कपडे बुननेवाले प्रक्रियाओंके द्योतक हैं। अब इनका भाव अंग्रेजीमें देता हूं—

Singly the two young Maids of different colours approach the six pegged warp in turns and weave it. The one draws out the threads, the other lays them. They break them not, they reach no end of labour.

Of these two, dancing round as it were, I cannot distinguish whether one ranks before the other. A Male weaves this web, a Male divides it, a Male hath stretched it to the cope of heaven.

(R. T. H. Griffith, Atharva Veda, vol. II page 34)

ये मंत्र बता रहे हैं कि स्त्रियां कपडा बुननेका काम किस ढंगसे किया करतीं थीं, और पुरुषोंकी सहायता किस रीतिसे होती थी। एकही खुड्डीपर दो स्त्रियां कपडा बुनतीं हैं, एक स्त्री तानेके कार्यमें तत्पर रहती है और दूसरी बानेके कर्ममें अपने आपको लगा रही है। दोनों स्त्रियां इतनी योग्यताके साथ अपना अपना कार्य करतीं हैं, कि उनमेंसे कोई भी कामको खराब नहीं करती, सूत्रको व्यवस्थाके साथ काममें लाती हैं, सूतको तोडती नहीं और बिगाडती नहीं, तथा अपना काम परिपूर्ण होनेतक विश्रामभी नही लेतीं!

यह मंत्रका वर्णन कार्यकर्ताओंको किस प्रकार कार्य करना चाहिये इस बातका उपदेश दे रहा है। पाठक इस दृष्टिसे इस मंत्रकी ओर देखें। दूसरे मंत्रका वर्णन और ही ढगका है। दो स्त्रियां नाचनेवाली स्त्रीके समान आनंदके साथ खुड्डीपर कपडा बुननेका काम कर रहीं हैं। किसीके भी मुखपर काम की थकावट नहीं है। दोनों उत्साहपूर्ण आनंदमय भावके साथ अपने अपने कार्यमें तत्पर

हैं। जो उनकी कार्यतत्परता देखता है वह नहीं कह सकता कि उनमें कौन पुराणी है वा कौन नवीन है। जो देखता है वह कहता है कि दोनों एक जैसी ही काम करनेमें निपुण हैं।

इन स्त्रियोंके साथ एक पुरुष बानेको ठीक कर रहा है, दूसरा तानेको ठीक प्रकार फैला रहा है और तीसरा सूत्रको ठीक ठाक बना रहा है। इसप्रकार तीन पुरुष और दो स्त्रियें कपडा बुननेका काम निरंतर कर रही हैं। इनमें कोई भी थकता नहीं, कोई विश्राम नहीं करता, कोई निरुत्साही नहीं होता, एकके पीछे दूसरा आकर अपना अपना काम यथायोग्य रीतिसे कर रहे हैं।

जिस मुख्य विषयके साथ इन मंत्रोंका संबंध है, उसका पूर्ण वर्णन करनेके लिये यहां स्थान नहीं है। परंतु मंत्रका स्पष्ट भाव, जो ऊपर बताया है, वह कपडा बुननेकी विद्याका उपदेश कर रहा है, इसमें कोई भी संदेह नहीं। ऊपर स्त्रियां कपडा बुनतीं हैं ऐसा स्पष्ट कहा ही है, कई स्त्रियां किसी अन्य हेतुके लिये अर्थात् विक्रय आदिके लिये बुनतीं हैं, परंतु कई स्त्रियां प्रेमसे अपने पतिके लिये ही कपडा बुनतीं हैं। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(३५) पत्नी अपने पतिके लिये कपडा बुनती है।

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ॥
वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥

अथर्व. १४।२।५१

" (ये अन्ताः) जो कपडेके अंतिम भाग हैं, (यावतीः सिचः) जो किनारियां हैं, (ये ओतवः) जो बाने हैं तथा (ये च तन्तवः) जो ताने हैं, इन सबके साथ (यत् पत्नीभिः उतं वासः) जो पत्नियोंके द्वारा बुना हुआ कपडा होता है (तत्) वह कपडा (नः स्योनं उपस्पृशात्) हमारे लिये सुखदायक हो। "

जो कपडेके अंतिम भाग हैं जहांसे खुले धागे फैलते हैं, जो किनारियोंकी नकशियां हैं, तथा कपडेके ताने और बाने, तथा उसका सब सूत्रभी पत्नीके द्वारा ही काता हुआ होना चाहिये । अर्थात् अपने पतिके लिये जो कपडा बुनना है उसका सब सूत पत्नी ही कांते, उससे ताना और बाना बनावे, कपडा बुने, उसकी किनारियोंकी उत्तम नकशियां बनावे और अंतिम धागोंको भी सुंदर और शोभावर्धक तैयार करे। पाठक यहां कल्पना कर सकते हैं, कि जो पतिव्रता धर्मपत्नी बडे प्रेमके साथ अपने पतिके लिये पहननेका कपडा स्वयं बनाती है वह मानो प्रत्येक सूत्रके साथ अपना हार्दिक प्रेमही उस कपडेमें बुनती है । सूत्र कांतनेके समय उस पतिव्रतादेवीके मनमें यह भाव है कि जो यह सूत कांता जाता है, वह अपने पतिके लिये है, इसलिये सूत्रभी उत्तम कांतना चाहिये । ताना और बाना बनानेके समय अपने पतिके शरीरके योग्य कपडेकी लंबाई चौडाई होनेके लिये ठीक प्रमाणसे संपूर्ण काम करती है, और प्रत्येक सूत्र रखनेके समय अपने पतिका हित चिंतन करती है। इस प्रेमके भावसे बुनाहुआ कपडा पहननेके लिये पतिभी अत्यंत हर्षित ही होता

होगा। प्रतिवार पहनेके समय वह समझता है, कि यह मेरी धर्म-पत्नीका स्वयं बुना हुआ कपडा है, इस कपडेके साथ मैं अपनी पतिव्रता सतीदेवीका प्रेमही पहनता हूं । प्रियपाठको ! ! विचार तो कीजिये, कि जिस वैदिक कालमें इस प्रकार पत्नी अपने पतिके-लिये पहननेका कपडा बुनती है, और उसको प्रेमके साथ पति पहनता है, उनमें परस्पर प्रेम किस श्रेष्ठ दर्जेका होगा ! हमारे विचारमें तो यही श्रेष्ठ गृहस्थियोंका आदर्श है ।

इस मंत्रका हृद्गत अल्प अंशसे युरोपीयन भाषांतरकारोंके मनमें भी उतरा हुआ है । देखिये म. ग्रिफित महोदयका भाषांतर— "May all the hems and borders, all the threads that form the web and woof, the garment woven by the bride, be soft and pleasant to our touch." इस मंत्रके भाषांतर का आशय पूर्व स्थलमें दिये हुए अर्थके समानही है। इस परकी टिप्पणी अवश्य देखने योग्य है—"The garment that the young husband is to wear on the first day of his wedded life, and that, apparently has been made for him by the bride. (ग्रिफित, अथर्व. पृष्ट १७९) विवाहके पहिले दिन तरुण पतिको पहननेके लिये विशेष प्रकारका कपडा उसकी पत्नी बनाती है। अस्तु। यह वैदिक उपदेश विचार करने योग्य है। इस बातसे कपडा बुननेका व्यापार घरेलु था यह सिद्ध होता है, अथवा वेदको यह अभीष्ट है कि यह व्यवसाय घरेलु बने। सूत कांतनेसे लेकर कपडा तैयार करनेतकके सब काम घरेलु न होनेकी अवस्थामें उक्त प्रकार पत्नी अपने पतिके लिये कपडा

नहीं बुन सकती । पत्नीका बनाया हुआ कपडा पति पहनता है, इस एक बातसेही यह धंदा घरेलु होनेकी आवश्यकता है, यह निःसंदेह सिद्ध है ।

इससे पूर्व बताया ही है कि "माता अपने पुत्रोंके लिये कपडा बुनती हैं ।" उक्त प्रमाणसे सिद्ध हुआ था, कि मातायें अपने पुत्रोंके कपडे बुने । अब इस मंत्रसे सिद्ध हो रहा है कि धर्मपत्नी अपने पतिके लिये पहनेके कपडे बुने । पाठक विचार करें कि इन प्रमाणोंसे क्या सिद्ध हो रहा है ? सूत कांतना कपडा बुनना आदि व्यवसाय हरएक घरमें होने चाहिए । हरएक घर और हरएक ग्राम अन्न और वस्त्रकेलिये पूर्ण स्वतंत्र ही होना चाहिये । इस विषयमें दूसरेके ऊपर अवलंबित रहना दुःखदायक ही है ।

(३६) विविध रंगोंके सूतका कपडा ।

वेदके काव्यमय वर्णनसे निम्न लिखित मंत्रमें बताया है कि यह उषारूपी स्त्री सुंदर रंगोंके सूत्रोंके साथ उत्तम कपडा बुनती है । इस अलंकारका उद्देश यह है कि जिसप्रकार उषा अपने पतिके लिये सुंदर रंगोंवाला कपडा बुनती है, उसीप्रकार पतिव्रता अपने पतिके लिये कपडा तैयार करे । वेदमें प्रायः स्त्रीधर्म उषाके वर्णनमें ही बताया हुआ होता है । इस बातको ध्यानमें धरकर निम्न मंत्रका विचार कीजिये—

उपासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूर-मिंद्रम् ॥ तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ यजु. २०।४१

" (बृहती) बडी (पयस्वती सुदुघे) उत्तम दूध देनेवाली (सुरुक्मे) तेजस्वी (उपासा नक्ता) उषा और रात्री ये दो स्त्रियें (पेशसा ततं तंतुं) उत्तम रंगोंके साथ फैले हुए तानेपर (संवयन्ती) उत्तम ढंगसे कपडा बुनती हुई (देवानां देवं) देवोंका देव जो शूर बडा (इंद्रं) प्रभु है उसकी (यजतः) पूजा करती हैं । "

इस मंत्रमें उषाके वर्णनके मिषसे स्त्रीका कर्तव्य बताया है ;-उषा विचित्र रंगोंके किरणोंसे अर्थात् सूत्रोंसे सुंदर कपडा आकाशमें बुनती है, और उस कपडेसे अपने पति सूर्यकी पूजा करती है । इसी प्रकार पतिव्रता स्त्री विविध रंगोंके सूत्रोंसे सुंदर कपडा बनावे और अपने पतिको अर्पण करके उसका आदर करे । इस मंत्रका निम्न वाक्य विशेष देखने योग्य है—

" पेशसा ततं तंतुं संवयन्ती "=सुंदर रंगोंके कारण शोभायमान सूत्रोंसे फैले हुए तानेपर उत्तम कपडा बुननेका स्त्रीका कर्तव्य है, यह इस मंत्रसे ध्वनित होता है । They weave with varied colour the long extended thread in concert. (म. ग्रिफिथ. यजु. पृ. १९१)

इस मंत्रके भावसे पूर्व मंत्रकी बातही सुदृढ हो गई है, और अब हमारे ध्यानमें आगया है कि वेदका आदेश इस विषयमें क्या

है। वेद उषाको प्रत्येक स्त्रीके सामने करता हुआ आदेश दे रहा है कि हे स्त्रि! देख! जैसी उषा सवेरे उठकर आकाशकी खुड्डीपर कपडा बुनती हुई अपने पतिका स्वागत करती है, उसी प्रकार हे स्त्रि! तू भी अपने पतिके लिये कपडा बुनो, सूत कांतनेके कामसे बुननेके सब काम करो और अपने परिश्रमसे बुना हुआ कपडा पतिको अर्पण करके उसकी पूजा करो।

(३७) कपडा बुननेके विषयमें वेदके सात उपदेश।

ऋग्वेदके एकही मंत्रमें कपडा बुनने और सूत कांतनेके विषयमें सात उपदेश दिये हैं, वेह प्रत्येक वैदिक धर्मीको ध्यानमें रखने चाहिये। देखिये वह मंत्र—

तंतुं तन्वन्, रजसो भानुमन्विहि, ज्योतिष्मतः
पथो रक्ष धिया कृतान्॥ अनुल्बणं वयत,
जोगुवामपो, मनुर्भव, जनया दैव्यं जनम्॥
ऋ. १०। ५३। ६

(१) तंतुं तन्वन्=सूत कांत कर=Spinning the thread.

(२) रजसः भानुं अनु-इहि=उसपर रंगका तेज चढाओ=Follow the shining colour, and—

(३) अनु-उल्बणं वयत=और सूत गंठीला न बनाकर उससे कपडे बुनो=weave the knotless thread.

(४) धिया कृतान् ज्योतिष्मतः पथो रक्ष=इसप्रकार बुद्धिसे बनाये हुए तेजस्वियोंके मार्गोंका रक्षण करो=Guard the pathways well, which wisdom hath prepared.

(५) मनुः भव=मननशील बनो=Be a thinker.

(६) दैव्यं जनं जनय=दिव्य प्रजा उत्पन्न करो=Bring forth divine progeny.

(७) जोगुवां अपः=यह कवियोंका काम है=This is the work of poets.

यह मंत्र अत्यंत स्पष्ट है और अर्थके विषयमें कोई संदेहही नहीं है। हे मनुष्य! (१) सूत कात कर, (२) उसपर उत्तम रंग चढाओ, (३) पश्चात उस सूतको खराब और गंठीला न बनाते हुए उसके कपडे बुनो, (४) इस रीतिके अनुसार चलकर तेजस्वी महात्माओंकी श्रेष्ठ बुद्धिसे निश्चित किये हुए सन्मार्गोंका संरक्षण करो, (५) सदा मननशील बनकर अपनी परिस्थितिका मनन करो, (६) सुप्रजा उत्पन्न करो, (७) यह सब कवियोंका काम है। तात्पर्य हे मनुष्य! तू यह न समझ कि, यह सूत कातने, कपडा बुनने आदिका काम हीन है, परंतु यह श्रेष्ठ कवियोंकोभी करनेके लिये योग्य है, क्यों कि इससे तेजस्वी पुरुषों द्वारा निश्चित किये हुए मार्गोंका संरक्षण होता है। जिस प्रकार सुप्रजा निर्माण करना आवश्यक है, उसी प्रकार अपने कपडे स्वयं बुननाभी अत्यंत आवश्यक है।

इस मंत्रका उपदेश इतना उत्तम और इतना सरल है कि इस पर कोई टीका टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं। प्रत्येक शब्द दिव्य उपदेशका प्रकाश फैला रहा है। इसलिये पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस मंत्रको कंठ करें और उसके शब्दोंका मनन करें। जो ऐसा

करेंगे उनके अंतःकरणमें स्वयं अर्थका गौरव फैलेगा, और वेदके उपदेशका महत्व उनके अंदर दृढ हो जायगा। अब इस विषयमें एकही मंत्र बताना है वह बताकर इस निबंध की पूर्ति करनी है।

(३८) कपडा बुननेकी विद्याके शिक्षक और शिष्य।

हरएक विद्या गुरुशिष्य परंपरासे फैलती है और जीवित रहती है। कपडा बुननेकी विद्या भी इसी रीतिसे सार्वत्रिक हो सकती है। इस बातकी सूचना निम्न मंत्रमें है देखिये—

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मे भिरायतः ॥ इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥ ऋ. १०।१३०।१

“(यः यज्ञः) जो यज्ञ (तंतुभिः विश्वतः ततः) तंतुओं द्वारा सर्वत्र फैलाया गया है और (एकशतं देवकर्मभिः आयतः) एकसौ एक दिव्य कर्मकर्ताओंके द्वारा विस्तृत किया गया है, उसमें (इमे पितरः) ये रक्षक, कि (ये आययुः) जो यहां पहुंचे हैं, (वयंति) कपडा बुनते हैं, वे (तते आसते) तानेके साथ बैठते हैं, और कहते हैं कि, (प्र वय) आगे बुनो, और (अप वय) पीछेका ठीक करो।”

(१) इमे पितरः वयंति=This do these protectors weave =ये पितर बुनते हैं,

(२) य आ ययुः=Who hitherwards are come=जो यहां पहुंचे हैं।

(३) तते आसते=They sit beside the warp,=वे तानेके साथ बैठते हैं।

(४) प्र वय, अप वय इति=and say, weave forth, weave back &c.=(और कहते हैं कि) आगे बुना, पीछे बुनोइ० ।

कपडा बुननेकी पाठशाळा (Weaving school) में जो शिक्षक होते हैं वे खड्डीके समीप तानेके साथ बैठते हैं और कहते हैं कि, हे शिष्यो! अब आगेका कपडा बुनो, वहांका ठीक करो, इस स्थानमें तुम्हारी गलती हो गई है, उसको इस प्रकार ठीक करो, अब आगे बुनते जाओ। इस प्रकार गुरुजन कपडा बुननेकी विद्या शिष्यको देते हैं।

(३९) उपसंहार।

इस लेखमें " वैदिक कालकी कपडा बुननेकी विद्या " का स्वरूप बतानेका यत्न किया है। जो पाठक इस लेखमें दिये हुए मंत्रोंका भावार्थ और इंगितार्थ जानेंगे वे जान सकते हैं कि, वैदिक कालमें यह घरेलु व्यवसाय था। अथवा यौं समझिये कि वैदिक सभ्यताके अनुसार यह धंदा घरेलु होना आवश्यक है। घर घरमें सूत कातनेका काम होना आवश्यक है, इस विषयके कई मंत्र इस लेखमें दिये गये हैं। मातायें अपने प्रिय पुत्रके लिये कपडा बुनतीं हैं ऐसा वर्णन है तथा पतिव्रता स्त्री अपने प्राणप्रिय पतिकेलिये स्वयं कपडा बनाती है, येह सब वर्णन इस समयमें भी बडे बोध-

प्रद हैं । वैदिक कालीन सभ्यताका आदर्श और गृहस्थीके धर्मका क्षेत्र उक्त उपदेशसे ज्ञात हो सकता है ।

इस लेखमें इस विषयके संपूर्ण मंत्र आगये हैं, ऐसी बात नहीं है । यदि संपूर्ण मंत्र लिये जाते और उनके अर्थोंका ऊहापोह पूर्ण रीतिसे किया जाता, तो इससेभी कई गुणा अधिक बडा लेख होना संभव था । इसलिये सारांशसे ही अत्यंत आवश्यक मंत्रोंका भावार्थ इस लेखमें दिया गया है । पाठक इन मंत्रोंका अधिक विचार करके अपने अनुमान निकालेंगे और वैदिक सभ्यताका आदर्श जाननेका यत्न करेंगे ।

इस लेखके अंतमें यह एक सूचना करना आवश्यक है, कि इस लेखमें जो जो मंत्र दिये हैं वे सबके सब जोलाहेके प्रकरणके नहीं हैं और न सब मंत्रोंका मुख्य वक्तव्य " कपडा बुननेकी विद्या " बतानाही केवल है । इनमेंसे कई मंत्र यज्ञप्रकरणमें हैं, कई द्यावापृथिवीके वर्णनके हैं, कई उषाके वर्णनके हैं तथा कई अन्य प्रकरणके हैं । अपने अपने प्रकरणका मुख्य वर्णन करते हुए दृष्टांत रूपसे " कपडा बुननेकी विद्या " का प्रकाश ये कर रहे हैं । यह वेदकी ही खास शैली है । किसी अन्य ग्रंथमें ऐसी अपूर्व शैली नहीं है ।

जो विद्वान वेद पढते हैं, उनको उक्त बातका पता है; परंतु जो सज्जन केवल इसी लेखको पढेंगे, उनके समझमें यह बात नहीं आसकती, इस लिये इस शैलीका उल्लेख यहां करना पडा है । जो पाठक इस लेखमें दिये हुए मंत्रोंको पढेंगे, वे समझेंगे कि ये

मंत्र विशेषकर " कपडा बुननेकी विद्या " का ही प्रकाश करने वाले हैं। मंत्रोंका स्पष्टार्थ ऐसाही है इसलिये पाठकोंका अनुमान ठीकही है। परंतु वास्तविक बात यह है कि इनमेंसे बहुतसे मंत्र इस " वस्त्र-विद्या " का प्रकाश करते हुएभी अपने अपने प्रकरणमें अन्य बातोंका वर्णन करनेमें समर्थ हैं। इस शैलीका अधिक स्पष्टीकरण करनेके लिये यहां स्थान नहीं है, परंतु मंत्रोंकी " गुप्त विद्या " की थोडीसी कल्पना होनेके लिये जो ऊपर कहा है, उतना पाठक अवश्य ध्यानमें रखें और समझें कि विभिन्न प्रकरणोंके मंत्र अपने अपने प्रकरणका भाव बताते हुए यहां " वस्त्र-विद्या " का प्रकाश आलंकारिक रीतिसे कर रहे हैं। इसीप्रकार वेदमें अनेक विद्यायें हैं। विभिन्न प्रकरणोंमें भिन्न भिन्न अलंकारोंसे विशेष विशेष विद्याओंका आविष्कार वेदमें हुआ है। जिस प्रक्रियासे एक एक विद्याका प्रकाश होना संभव है, उस प्रक्रियाका अवलंबन करके यह लेख लिखा है। आशा है कि पाठक इस रीतिका अवलंबन करके अनेक विद्याओंका आविष्कार करनेमें सहाय्यता देंगे।

इस प्रकार प्रयत्न करनेकी अवस्थामें अशुद्धियां होना संभव है। परंतु यदि हमारी अशुद्धियां हो गईं, तो हमारे पीछे आनेवाले विद्वान उनको ठीक करेंगे। अशुद्धियोंके भयसे प्रारंभका काम बंद नहीं होना चाहिये। आशा है कि पाठक इस भावको ध्यानमें धारण करते हुए संशोधन का कार्य करेंगे।

विषयसूची।

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग। प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षाके लिये। मू. -) एक आना (तृतीयवार मुद्रित)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म-शिक्षाके लिये। मू. =) दो आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षाके लिये। मू. ≡) तीन आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। मू. १॥) डेढ रु.।

(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ≡) तीन आने।

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।) चार आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ≡) तीन आने। (,,)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।) चार आने। (,,)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥) आठ आने। (,,)

(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥) आठ आने। (,,)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥) आठ आने (,,)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥) आठ आने। (,,)

[७] ब्राह्मण-बोध-माला ।

(१) शत-पथ बोधामृत । मू० ।) चार आने ।

(२) गो-पथ-शोभामृत । (छप रहा है)

वैदिक-धर्म ।

"वैदिक धर्म" पूर्णतया उत्साहका धर्म है । मूल वेदमंत्रोंमें जो स्फूर्ति और उत्साह है, जो आशावाद और बल संवर्धनका भाव है, जो निरुपम तेजस्विताका विस्तार करने और आत्मगौरव बढानेवाले उपदेश हैं उनका प्रकाश होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये चिरकाल लाभ देनेवाले स्वधर्म बोधक लेखोंको ही इस मासिकमें स्थान दिया जाता है ।

इस मासिकका आकार क्रौन १६ पेजी है और प्रतिमास ४८ पृष्ठ दिये जाते हैं । बारह अंकोंका वार्षिक मूल्य डाकव्यय समेत ३॥) साढे तीन रु० है । विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु. है ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा).